पक्का गाना

[सात एकांकी]

Pakka Gana

उपेन्द्र नाथ अश्क

Upendra Nath Ashk

Nelab Prakashan Grah

नीलाभ प्रकाशन गृह
प्रयाग।

Price Rs. 3-0-0
मूल्य ३)

प्रकाशक
नीलाभ प्रकाश गृह, ५ खुसरो बाग रोड, इलाहाबाद-१
मुद्रक
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

प्रकाशकीय

दिसम्बर १९३६ में लम्बी बीमारी के बाद अपनी पहली पत्नी की मृत्यु के अवसर पर कुछ घटनाओं का अश्क जी के मन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अनायास 'पापी' और 'लक्ष्मी का स्वागत' दो एकांकी लिख डाले ! तब से लेकर अब तक अश्क जी निरन्तर एकांकी नाटक लिख रहे हैं। यह ठीक है कि उन्होंने केवल 'जय पराजय' सा लम्बा ऐतिहासिक नाटक ही नहीं लिखा, बल्कि 'छटा बेटा', 'स्वर्ग की झलक', 'अलग अलग रास्ते' 'क़ैद', और 'उड़ान' आदि सफल आधुनिक बड़े नाटक भी लिखे हैं, लेकिन इसके बावजूद उन्हें एकांकी लिखना सदा प्रिय रहा है और आज भी वे समय मिलने पर एकांकी लिखते हैं।

इन पन्द्रह-सोलह वर्षों में अश्क ने सब तरह के एकांकी लिखे हैं और जैसा कि श्री जगदीश चन्द्र माथुर ने 'राष्ट्र भारती' में लिखा है : "अश्कजी के एकांकियों से हिन्दी के एमेचर रंगमंच को बड़ा बल मिला है।"

'देवताओं की छाया में', 'चरवाहे', 'पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ' के

बाद 'पक्का गाना' अश्क जी के एकांकियों का चौथा संग्रह है। इसके नाटक चुनने में हमने इस बात का ध्यान रखा है कि इसमें सभी तरह के नाटक पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किये जा सकें। सरलता के विचार से हमने सांकेतिक नाटकों को छोड़ दिया है (जो अलग संग्रह चरवाहे' में संकलित हैं) लेकिन इस बात का ख़्याल हमने किया है कि 'पक्का गाना' के एकांकी सरल होने के साथ उत्कृष्ट भी हों और मनोरंजन के साथ भिन्नता का आभास भी दिलायें। संग्रह में जहां 'पापी' सा एकांकी है, वहां 'पक्का गाना' सी साहित्यिक वेराइटी (Literary Variety) भी है। दुखद अथवा सुखद नाटक ही नहीं, बल्कि ऐसे भी हैं जिनकी ट्रेजेडी में कामेडी और कामेडी में ट्रेजेडी छिपी है।

अश्क जी ने नाटक मुख्यतः रंगमंच के लिए लिखे हैं। इनमें से अधिकांश बड़ी सफलता से खेले भी गये हैं, लेकिन इनमें से कुछ ऐसे भी हैं जो रेडियो पर भी बड़े सफल हुए हैं। 'पापी' न केवल विभिन्न स्टेशनों से पृथक रूप में ब्राडकास्ट हुआ, बल्कि दो बार इन्टर-स्टेशन-प्ले के रूप में भी खेला गया। 'पक्का गाना' भी माइक पर इतना सफल हुआ कि इसकी तारीफ़ 'स्टेट्समैन' तक ने की।

प्रस्तुत संग्रह के नाटक कई वर्ष से अप्राप्य थे। अब वर्षों बाद नये रूप में, सुन्दर ढंग से छप रहे हैं। 'कामदा' पहले कहीं नहीं छपा; पहली बार संग्रह में छप रहा है। आशा है अश्क जी के पाठक हमारे इस प्रयास को पसन्द करेंगे।

—प्रकाशक

आदरणीय भाभी तथा श्री भगवान सहाय जी को
साभार

इन नाटकों के अधिकार लेखक के पास सुरक्षित हैं। उसकी आज्ञा के बिना न उन्हें खेला जा सकता है, न ब्राडकास्ट किया जा सकता है, न किसी फ़िल्म के काम में लाया जा सकता है और न किसी संकलन में लिया जा सकता है।

एमेचर कम्पनियां नाटक खेलने से पहले कृपया लेखक की अनुमति प्राप्त कर लें। टिकेट पर नाटक खेलें तो लेखक को रायल्टी देना न भूलें।

इस सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार प्रकाशक द्वारा लेखक से किया जा सकता है।

क्रम

तूफ़ान से पहले

पात्र

मां

मुलिया

पारो

बल्लू

घीसू

रामू

शिब्बू

बदरी

न्याज़ मियां

हयात अल्लाह

गिरधारी दादा

दो शहरी हिन्दू, दो पठान और दूसरे भैय्ये

समय

सितम्बर, १९४६

वक्त

शाम

[पर्दा उठने पर ताड़ के पत्तों से छाई हुई एक झोपड़ी दिखाई देती है । झोपड़ी की दीवारें सरकंडों की बनी हुई हैं, जिन्हें गोबर और मिट्टी से लीपकर इस योग्य बना लिया गया है कि वर्षा के पानी से झोपड़ी के वासियों को यथासम्भव शराबोर होने से बचा सकें ।

झोपड़ी की छत इतनी नीची है कि झुके बिना इसके बरामदे अथवा अन्दर की कोठड़ी में प्रवेश करना असम्भव है । सड़क से देखनेवाले को इस झोपड़ी की कोठड़ियों के आधे किवाड़ ही दिखाई देते हैं, क्योंकि शेष ढालुवीं छत की ओट में छिप जाते हैं ।

बरामदे के मध्य एक पुरानी सिंगर-मशीन रखे घीसू कपड़े सी रहा है। उसके आसपास कपड़े बिखरे पड़े हैं । सामने दीवार के साथ एक साधारण-से अनघड़ रैक पर कुछ किताबें और कपड़ों पर एक समाचार पत्र के पृष्ठ भी पड़े हैं । उसके बायें हाथ को, कोठड़ी के आगे, एक चौकी पर कत्था, चूना और मसाला सजाये, उसकी पत्नी मुलिया एक ग्राहक के लिए पान बना रही है । घीसू के दायें हाथ को एक झिलंगा पड़ा है जिसके पास

घीसू की लड़की, पारो और बराबर की दरगाह के मुजावर, ख्वाज़ मियां, का किशोर बेटा बल्लू "कटम कटउआ" खेल रहे हैं—पारो उठकर भागने की राह देख रही है और बल्लू, इस ताक में है कि वह उठे और वह छुए।

और भी दायीं ओर को, बरामदे की दायीं दीवार के साथ, एक भैंस बंधी हुई जुगाली कर रही है। उसके पीछे, सामने की दीवार के दायें कोने में, एक और कोठड़ी है जिसमें वर्षा के कारण भैंस की सानी के लिए भुस भरा रखा है।

मुलिया के पीछे जो कोठड़ी है उसके अन्धकार में, दरवाज़े के बराबर को, एक खाट दिखाई देती है, जिस पर मुलिया की बीमार सास पड़ी कराह रही है।

घीसू की झोपड़ी बम्बई की एक निकटवर्ती बस्ती में सड़क के किनारे बनी हुई है। यह सड़क कुछ इतनी रौनक-भरी नहीं। इसके इर्द-गिर्द अधिकांश ग्वाले बसते हैं। दायीं ओर लोकल स्टेशन है और बायीं ओर, घोड़बन्दर रोड के परे, शहरी बस्ती है और यह सड़क लोकल स्टेशन और शहरी बस्ती के मध्य पुल का-सा काम देती है। इसीलिए लोकल ट्रेन के आने जाने के समय इस पर कुछ रौनक हो जाती है।

घीसू की बस्ती में यद्यपि दूसरी जातियों और व्यवसायों के लोग भी आबाद हैं तो भी इसमें भैय्या लोगों का बाहुल्य है। ये भैय्ये उन डेरियों, दुग्धालयों या तबेलों में काम करते हैं, जो इस सड़क के इर्द-गिर्द बिखरे हुए हैं और जिनमें पलनेवाली भैंसों के खुरों के कारण, वर्षा ऋतु में, सड़क से आध आध मील इधर उधर, टखनों तक बिना

कीचड़ में वैसे चलना-फिरना कठिन हो जाता है। इन डेरियों में से अधिकांश गिरधारी दादा की हैं। दादा बम्बई की भाषा में प्यार का नहीं, भय और त्रास का शब्द है और 'मवाली' अथवा 'गुंडा' का पर्य्यायवाची है, किन्तु गुंडे या मवाली के साथ जिस गरीबी और मरभुक्खे-पन का ध्यान आ जाता है, उसका 'दादा' शब्द से अधिक सम्बन्ध नहीं—क्योंकि बम्बई में लखपती 'दादा' भी हैं जिनकी अरदल में अन्य कई दादा उसी प्रकार तत्पर खड़े रहते हैं जिस प्रकार उस अन्तर्राष्ट्रीय दादा, हिटलर की अरदल में गोरिंग और रिबन ट्राप—और जिस तरह उस दादा-महान से दूर दूर रहनेवाले भी डरते थे, उसी तरह यद्यपि गिरधारी दादा का साम्राज्य भी इस सड़क और इसके इर्द-गिर्द फैली हुई डेरियों तक ही सीमित है, फिर भी घोड़बन्दर रोड से परे बसनेवाले धनी-निर्धन सभी उससे खौफ़ खाते हैं और स्टेशन से आते जाते समय उसे 'नमस्कार' करना अथवा एक विवश-सी मुस्कान ओठों पर लाकर, उसका हालचाल पूछना आवश्यक समझते हैं।

रहे इन डेरियों में काम करनेवाले भैय्ये तो वे दिन रात गिरधारी दादा की उन्नति और उत्थान की गाड़ी में बैलों सरीखे जुते रहते हैं। तबेलों की सफ़ाई और पशुओं की रखवाली के साथ साथ, इधर दोपहर और उधर आधी रात को उठकर दूध दोहने से लेकर, (इधर प्रभात और उधर सन्ध्या से पहले-पहले,) 'ग्रेटर बम्बई' के विभिन्न स्टेशनों तक उसे पहुंचाने का काम भी करते हैं। नींद आती है तो वहीं लोकल ट्रेन की खुरी सीटों, प्लेटफ़ार्मों या फुटपाथों पर ऊंघ लेते हैं और भूख लगती है तो

चने या 'दाल सेव' या 'खारी सेंग'* खाकर पेट की आग बुझा लेते हैं।

गिरधारी दादा किस तरह इतने सम्पन्न हो गये, इसके सम्बन्ध में कई किम्वदन्तियां प्रसिद्ध हैं (क्योंकि जब वे बम्बई आये थे तो उनकी जेब में चने तक के लिए पैसे न थे।) लेकिन सबसे प्रसिद्ध कहानी यह है कि पीर क़लंदर अली के आशीर्वाद से उन्होंने यह सब धन-सम्पत्ति पाई है। इसीलिए पीर साहब की दरगाह, जो किसी समय एक टूटी हुई समाधि और एक जर्जर चबूतरे की सूरत में थी, अब गिरधारी दादा की कृपा से पक्की बन चुकी है।

लेकिन यह तो उस समय की बात है, जब हिन्दू मुसलमान एक दूसरे के पवित्र स्थानों का आदर करते थे और एक दूसरे के धार्मिक उत्सवों में शामिल होना बुरा न समझते थे और गिरधारी दादा ने अपना जीवन इसी बस्ती के एक दुग्धालय में, एक साधारण भैय्ये के रूप में आरम्भ किया था। अब तो दादा दरगाह की ओर देखना भी पाप समझते हैं और उसके वर्तमान मुजावर, न्याज-मियां की बढ़ती हुई लोकप्रियता उनके लिए असह्य है और अपने साम्राज्य में दरगाह का अस्तित्व उन्हें कांटे की तरह खटकता है।

पर्दा उठने के पल भर बाद बैकग्राउण्ड में गाड़ी के आने की आवाज़ सुनाई देती है। घीसू के हाथ की गति भी तेज़ हो जाती है। मुलिया की चौकी के सामने जो व्यक्ति

* खारी सेंग = उबली नमकीन मूंगफली।

खड़ा है उसे शायद इसी गाड़ी पर सवार होना है, इसलिए वह जल्दी मचाने लगता है :]

वह व्यक्ति : गाड़ी आ रही है मुलिया, जल्दी पान दो !

मुलिया : (जल्दी जल्दी पान बनाकर देते हुए) लो !

[राही पान ले और पैसे फेंककर अन्धाधुन्ध भाग खड़ा होता है। गाड़ी के आने और घीसू की मशीन के चलने की आवाज़ एक दूसरी में घुल मिल जाती हैं। इधर गाड़ी स्टेशन पर रुकती है, उधर घीसू की मशीन खट से रुक जाती है। घीसू जल्दी जल्दी हत्थी घुमाने का प्रयास करता है, किन्तु मशीन नहीं चलती। वह मशीन खोल कर देखता है और खट से बन्द करके माथे को ठोंक कर बैठ रहता है।]

मुलिया : क्यों, क्या हुआ ?

घीसू : (खीझकर) हुआ बुरे का सिर !

[फिर उसी प्रकार उदास और निराश बैठ रहता है। उसकी मां कराहना छोड़ देती है और अपनी चारपाई पर तनिक आगे को खिसक आती है।]

माँ : क्या हुआ बेटा ?

घीसू : (कुछ संयत होकर) कुछ नहीं मां, फिरकी टूट गई।

माँ : तो ऐसे निरास क्या बैठ गये हो ? और ले आना।

घीसू : तुम भी अम्मा.....कौन लिये बैठा है मेरे लिए फिरकियां ?

[कुछ आकुल होकर खाली मशीन ही चलाने लगता है। बैक ग्राउन्ड में गाड़ी के चलने की आवाज़ आती है....सड़क पर इक्का-दुक्का आदमी गुज़रने लगते हैं। तभी पारो उठकर भागती है कि बल्लू उसे छू लेता है।]

पारो : (उसकी बारी देने को हाथ बढ़ाते हुए) क्यों कितना दौड़ाया ?

बख्शू : (उसके दोनों हाथ अपने हाथ में लेता हुआ) अब ज़रा मेरी बारी शुरू हुई है, देखना !

[पारो के दोनों हाथ बांधकर उसके अँगूठे और उँगलियों के मध्य अपने दोनों हाथों से आरी सी चलाता हुआ बख्शू गाता है :]

कटम कटउआ
सागर दउआ
तू मेरी नानी
मैं तेरा नउआ
बैठे को छुएँ कि खड़े को ?

पारो : खड़े को !

[बख्शू झट उसके हाथ छोड़कर बैठ जाता है। पारो ज़रा परे छूने को तैयार खड़ी रहती है। बख्शू दो-चार बार उठने का भुलावा देकर एक बार जो भागता है तो झिलंगे के कई चक्कर खाने पर भी पकड़ाई नहीं देता। पारो थक कर रुक जाती है।]

— : हम नहीं खेलते।

[जाकर घीसू की गोद में गिर जाती है। बख्शू उसे खींचता है।]

घीसू : (दोनों को ढकेलकर) जाओ उधर दरगाह में खेलो और मुझे तंग न करो।

पारो : (नहीं जाती, वहीं चिमटी रहती है।) बख्शू चुटकी काटता है बापू !

बख़्शू : (उसे पूर्ववत खींचता हुआ) मुझे इतना दौड़ाया और मेरी बारी आई तो बापू की गोद में जा बैठी ।

घीसू : (उसे और भी ज़ोर से ढकेल कर) जा भाग ! मेरी जान न खा ! जा खेल उधर दरगाह में जाकर !

[पारो पल भर के लिए अपने पिता के रुद्र-रूप को देखती रहती है । फिर उसकी दृष्टि मूर्खों की तरह मुंह बाये खड़े बख़्शू पर जाती है और एक चंचल मुस्कान उसके नयनों से निकल कर उसके सारे मुख को प्रदीप्त करती हुई बिखर जाती है । उछल कर वह बख़्शू को छू लेती है और 'छू लिया !' 'छू लिया !' का शोर मचाती हुई भाग जाती है । बख़्शू भी उसके पीछे भाग जाता है ।]

घीसू : (बेज़ारी से मशीन परे हटाकर समाचार-पत्र उठाते हुए) कम्बख़्त इस फिरकी को भी आज ही टूटना था । परसों गणेशचतुर्थी है, गिरधारी दादा जान खाजायँगे— पांचों कुर्ते उनके सिलनेवाले हैं ।

मुलिया : तुम्हें तो गजट बांचने की पड़ी है । जाकर बदल क्यों नहीं लाते फिरकी ?

घीसू : (समाचार-पत्र परे हटाकर) तेरा भेजा बराबर नहीं । फिरकी मिलती है चोर बाज़ार में—और वहां आजकल हिन्दू को पा जायें तो काट के दस टुकड़े कर दें ।

[रामू, एक तीस-बत्तीस वर्ष का हृष्ट-पुष्ट युवक, गले में बंडी, कन्धे पर अंगोछा और घुटनों तक ऊंची धोती कमर में बांधे स्टेशन की ओर से तेज़ तेज़ आता है । इकन्नी मुलिया के आगे फेंकता है और बात घीसू से करता है । मुलिया पान बनाने लगती है ।]

रामू : सुना तैंने घीसू, मदनपुरे माँ आठ भैइयन कर कतल करि डारा इन लीगी मुसलमानन ने।

मुलिया : (पान लगाना छोड़कर) अरे कहाँ ? कौन धनी के तबेला माँ ?

रामू : उसी पाजी खोजा के तबेला माँ, और कहाँ !

मुलिया : सत्यानास हो इन मूंड़ी काटे हत्यारों का ! श्यामू और लकड़िया......

रामू : मारे गये दोनों, एक हरियै बचा, वह भी भीति फांदि के, मुदा घायल वहू हो गवा।

मुलिया : बहुतेरा कहा था गिरधारी दादा ने कि मति जाव ह्यां से छोड़ि के, पर उन्हें तो ज्यादा पगार का मोह था। बदी को कौन टारे भैय्या ?

माँ : (चारपाई पर कुछ और आगे को सरक कर) राम ! राम ! उन बेचारों ने किसी का क्या लिया था ? वे गरीब तो हिन्दू मुसलमान दोनों को दूध पहुँचाते थे।

घीसू : (जिसके चेहरे पर और भी गहरा बादल छा जाता है।) गरीब और भोलेभाले ही तो मारे जाते हैं इस फिसाद में, अम्माँ !

मुलिया : ये हत्यारे मुसलमान भी ऐसे ही मारे जायें तो इन्हें भी मालूम हो......

घीसू : वे भी मारे जाते हैं। इस फ़िसाद में तो वेचारे ईसाई और पारसी भी मारे गये।

[मुलिया पान लगाकर रामू को दे देती है। कुछ और लोग आ इकट्ठा होते हैं, जिनमें शिब्बू भी है—गिरधारी दादा का खास चेला।]

शिब्बू : (मुलिया के सामने इकन्नी फेंकते हुए) उन मूर्खों से कहा

था कि नौकरी छोड़ आओ। (मुलिया से) दो पान लगाओ, मुलिया !

रामू : अचानकै तो भड़की आग दादा और फिर उस हरामी खोजे ने कहा, 'तुम लोग ह्यां रहो, फाटक बन्द रहेगा, कऊ तुम्हारा बार भी बांका नाहिं करि सकत।' मुदा पहले ही हल्ला मां खोल दिया किवाड़ कायर ने। बन्द तबेला, चाकू छुरा से लैस इतने मुसलमान, और निहत्थे भैय्या ! अंग-अंग काटि के रख दिया निर्दइयन ने। मेरे तो हिरदे में तभी से आग-सी लग रही है।

शिब्बू : भैय्या लोगों को इन पाजी मुसलमानों के तबेलों में कभी नौकरी न करनी चाहिए।

भीड़ में से एक : सभी उस कायर खोजे-से तो नहीं होते, दादा। उसी मदनपुरे में वह फ़ज़लू पंजाबी भी तो है। पूरे एक दर्जन भैय्या काम करते हैं उसके यहां। बार-बार गुण्डे दल-बल लेकर आये। धमकी दी कि फाटक न खुला तो हम आग लगा देंगे तबेले को—तलवार सूंतकर निकल आया वह पंजाबी, कि है किसी मर्द के बच्चे में हिम्मत तो बढ़े आगे। जान जोखम में डाल दी, पर तबेले का फाटक नहीं खोला।

दूसरा : वह खुद दादा है मदनपुरे का। उसके तबेले को आग लगे तो वह सबके घर जला दे !

शिब्बू : पर आग में रहकर उसकी लपटों से कै दिन बचा जा सकता है, उनकी भी बारी आजायेगी।

भीड़ में से तीसरा : भैय्यों को अपनी दलबन्दी करके अपनी रक्षा आप करनी चाहिए।

शिब्बू : निरी दलबन्दी ही नहीं। अपने भाइयों की हत्या का बदला लेना चाहिए।

(मुलिया पान लगाकर शिब्बू को देती है।)

रामू : भैय्या होत है जैसे बैल। चुप चाप अपनी राह चला जात है। किसी से मतलब नहीं राखत, मुदा कोई छेड़े तो सींग भोंकि देत है!

(पान की पीक सड़क पर थूकता है।)

शिब्बू : (पान का बीड़ा कल्ले में रखकर कंधे पर रखे साफे से हाथ पोंछते हुए) सोये हुए सिंह को छेड़ा है इन मुसलमानों ने। आठों भैय्यों की हत्या का बदला जल्द ही लिया जायगा।

(जोश से आगे आगे चलता है।)

रामू : (उसके पीछे चलते हुए) लिया जायगा और जरूर लिया जायगा। दादा के पास चलो पहले, शिब्बू।

[सभी जोश से रामू और शिब्बू के पीछे पीछे चलते हैं। घीसू लम्बी सांस भरकर फिर समाचार-पत्र खोल लेता है।]

मुलिया : (चिन्ता के स्वर में) न जाने इन लोगों के मन में क्या है? कहीं खून-खराबी न करें?

माँ : तू चोर-ओर बाजार न जाइयो, घीसू!

मुलिया : न जाने यह मारामारी कब बन्द होगी?

घीसू : जाने कभी बन्द भी होगी या नहीं? पांच कुर्ते पड़े हैं और मशीन की फिरकी टूट गई।

(फिर समाचार-पत्र पढ़ने का प्रयत्न करता है।)

माँ : (उठकर कराहती हुई उसके पास आ जाती है) निरबल बिछिया सारे ओगुन, कभी फिरकी टूट गई, कभी हत्थी टूट गई, कभी सुई टूट गई—अब इस मशीन में धरा ही

क्या है ? पच्चीस तीस बरस तो चल ली। यह अब बूढ़ी हो गई है, इसे छुट्टी दे ! गजट छोड़, ला एक कुर्ता मुझे दे, मैं तुरपे देती हूँ।

घीसू : नहीं मां, तुम आराम करो । अब तुम क्या आंखें फोड़ोगी ? कल सी लूंगा । जान तो लेगा नहीं गिरधारी दादा। इन्हीं लोगों ने तो उठाया है यह सब फ़ितना फ़िसाद । **(फिर जैसे अपने आप से)** तबलीग़, शुद्धि, दीवाली, मुहर्रम, गाय और बाजे का सवाल हटा तो साला यह झंडों का सवाल आ गया। इन लोगों को तो फ़िसाद कराने और अपना उल्लू सीधा करने का बहाना चाहिए! न जाने इस देश के वासियों को कब समझ आयगी । अरे भई, एक दूसरे को बुरे लगते हैं तो न लगाओ झंडे !

[बदरी प्रवेश करता है । लम्बा तगड़ा युवक है । एक दफ्तर में क्लर्क है। राष्ट्र-संघ का सदस्य और भड़कीले स्वभाव का—प्रातः सायं लाठी चलाना सिखाता है ।]

बदरी : **(मुलिया से)** पूना काला सादा ! **(फिर घीसू की झोपड़ी पर एक दृष्टि डालकर, उसे सम्बोधित करते हुए)** क्यों जी घीसू, यह क्या हरकत है ? तिरंगा नहीं लगाया तूने ?

घीसू : जिन लगाया है उन कौन तीर मार लिया है, बदरी भैय्या ?

बदरी : इसमें तीर मारने की कौन बात है ? अपना राज हुआ है तो क्या खुशी न मनायें ? इन साले मुसलमानों ने काले झंडे लगाये हैं, तो हम तिरंगे न फहरायें ?

घीसू : फहराइए, सिर फोड़िए, फोड़वाइए !

बदरी : सिर फुटौव्वल के डर से हम अपना अधिकार तो नहीं छोड़ देंगे ?

घीसू : (पूर्ववत् समाचार-पत्र पर दृष्टि जमाये हुए) अधिकार हमारा कौन लिये जाता है बदरी भैय्या । हम झंडे न लगायेंगे तो क्या हमारी बनी सरकार टूट जायगी ?

बदरी : इन लीगियों ने काले झंडे लगाये हैं......

घीसू : उन्हें दुःख है तो आप उन्हें चिढ़ायें क्यों ? भरा आकाश ही नीचा होता है भैय्या । आप को राज मिला है, आप ही को नमना चाहिए ।

(मुलिया पान बढ़ाती है ।)

बदरी : तुम्हारी तो मति मारी गई है, (पान लेकर पैसे फेंकता है और पान कल्ले में रखता है ।) चार भाई जब आकर यहां झंडा लगायेंगे तो देखूंगा तुम क्या कर लेते हो ?

(टेढ़ी नजरों से उसकी ओर देखता हुआ चला जाता है ।)

मुलिया : मति तो नहीं मारी गयी तुम्हारी ? जल में रहे क्या, और मगर से वैर क्या ? जब वे कहते हैं तो लगा काहे नहीं लेते झंडा ? पहले तो बात बात में लगाते थे तिरंगा ।

घीसू : मति तुम्हारी मारी गई है । झंडा लगाने में मुझे क्या एतराज़ हो सकता है ? पर मुसलमान इससे चिढ़ते हैं ।

मुलिया : झंडा मुसलमानों का भी तो है । तुम्हीं कहते थे कि इसमें हरा रंग उनका है ।

घीसू : वह तो है । पर बहुत से मुसलमान नहीं मानते । वे इस जीत को अपनी हार समझते हैं । उनके लीडर अंट-संट भाषण देते हैं । भड़के हुए तो वे हैं ही, मैंने यहां

तिरंगा लगाया और बराबर की दरगाह में किसी ने चिढ़कर काला झंडा लहरा दिया तो ? भैय्यों के तेवर तो तुमने देखे ही हैं, खून हो जायेंगे यहीं !

मुलिया : हो जायें। इन मुसलमानों को भी पता चले कि भैय्यों का लहू इतना सस्ता नहीं।

[घीसू समाचार पत्र फेंक कर क्रोध भरी दृष्टि से मुलिया को ओर देखता है और भरे हुए गले से चिल्लाता है :]

घीसू : मुलिया !

[स्टेशन की ओर से न्याज़मियां दो पठानों को साथ लिये आते हैं। घीसू उनका अभिवादन करता है :]

— : आइए, आइए, न्याज़मियां ! (चारपाई घसीटकर उनके आगे करते हुए) कहिए, किधर से आ रहे हैं ?

न्याज़मियाँ : शहर से आ रहा हूँ, भाई ! (साथी पठान युवकों की ओर इशारा करते हुए) इन बच्चों को लेने गया था।

घीसू : क्या हाल चाल है शहर का ?

न्याज़मियाँ : अरे भाई, क्या हाल चाल पूछते हो ? तुमसे क्या छिपा है ? सभी कुछ तो आ जाता है अखबारों में। भाई को भाई काट रहा है। फ़िसाद तो हिन्दू मुसलमानों में पहले भी हुए, लेकिन ऐसा भयानक और खूनी फ़िसाद पहले कभी नहीं हुआ। (एक दो क्षण खांसते हैं।) कलकत्ते का हाल तो तुमने पढ़ा ही होगा। नन्हे मासूम बच्चों के सीने में छुरे भोंके गये। औरतों की छातियां काटी गईं। बेकसूर बच्चे-बूढ़ों को चार-चार मंज़िले मकानों से नीचे फेंका गया, ज़िन्दा जलाया गया।

घीसू : कलकत्ते में जो हुआ वही बम्बई में भी हो रहा है।

न्याज़मियाँ : (एक पठान युवक की ओर संकेत करते हुए) इस रमजू

का बूढ़ा बाप वहां गिरगाम में एक सेठ के यहां चौकीदार था, छुट्टी पर गया हुआ था। लौटने पर उसे तो मालूम था नहीं कि यहां भाई भाई के लहू का प्यासा है। वह सीधा चला अपने सेठ के यहां। रास्ते में पत्थर मार मार कर मार डाला ज़ालिमों ने। इससे भी जी न भरा तो छुरों से उसकी तड़पती लाश को ज़ख्मी किया और दुःख इस बात का है कि औरतें और बच्चे अपनी खिड़कियों से देखते थे और खुश होते थे।

घीसू : (लम्बी सांस भरता है।) भोले भाले लोगों के दिलों में ज़हर भर दिया गया है, न्याज़मियां !

न्याज़मियाँ : ये लोग नहीं जानते कि किसी जगह एक हिन्दू मारा जाता है तो दूसरी जगह एक मुसलमान की क़ब्र तैयार होती है। अगर किसी जगह एक मुसलमान के छुरा भोंका जाता है तो दूसरी जगह एक हिन्दू खंजर का शिकार होता है। ये लोग क्यों नहीं समझते ? सरकार क्यों कुछ नहीं करती ? लीडर क्यों कुछ नहीं करते ?

घीसू : सरकार यही चाहती है और लीडर बिल्ली को देखकर भी कबूतर की तरह आंखें बन्द किये हुए हैं। यह सब तो होगा ही।

न्याज़मियाँ: सरकार का क्या जाता है ? भुस में चिंगारी डालकर जमालो तो अलग खड़ी है ! लीडरों का भी क्या जाता है ? अपने दीवानखानों में आराम से बैठे, भड़कीले बयान झाड़ देते हैं, उनका आराम और उनकी लीडरी क़ायम रहे, मौत तो हम गरीबों की है।

घीसू : सारे देश की बदकिस्मती है, बाबा ! आज़ादी की सांस ली नहीं कि भाई को भाई काटने लगा।

न्याज़मियाँ : (लम्बी सांस भरकर माथे को ठोंकते हुए) न जाने खुदा को क्या मंजूर है ? मैं तो इन बच्चों को ले आया। इस खूनी फ़िसाद में कम्बख्ती तो इन लोगों की है। बेचारे चौकीदारी करते हैं—हिन्दू के घर की भी, मुसलमान के घर की भी। आम मुसलमान तो पतलून कोट पहनकर बच जाते हैं। यह पठान बच्चे तो छिप नहीं सकते, मारे जाते हैं।

घीसू : यही हाल हिन्दुओं में भैय्यों का है। आज ही मदनपुर में आठ भैय्यों की हत्या कर दी वहां के मुसलमानों ने।

न्याज़मियाँ : दूधवाले, फेरीवाले, चौकीदार, डाकिये, भोले-भाले राही—यही लोग तो मारे जा रहे हैं इस फ़िसाद में।

(उठ कर चलने लगते हैं।)

घीसू : (उनके कन्धे पर हाथ रखकर उन्हें रोकते हुए) न्याज़मियां !

(न्याज़मियां रुक जाते हैं। धीमे स्वर में घीसू कहता है :)

— : मैं कहता था, तुम न दरगाह पर काला झंडा लगाना बाबा, मदनपुरे में जो भैय्ये मरे हैं, उनमें हमारे श्यामू और लकड़िया भी थे।

न्याज़मियाँ : इन्ना लिल्लाहे व इन्ना इलैहे राजऊन ! (लम्बी सांस भरकर) न जाने इस दुनिया का क्या होनेवाला है ?

घीसू : यहां के लोग भी कुछ बिफरे हुए हैं बाबा, इसलिए मैंने कहा था कि काला झंडा......

न्याज़मियाँ : नहीं भाई, हमें क्या लेना है इन काले-सफ़ेद झंडों से ! क़लन्दर साईं इंसान इंसान को बराबर समझते थे। उनकी दरगाह पर हिन्दू क्या, मुसलमान क्या, सभी आते हैं, और मन की मुरादें पाते हैं।

घीसू : वह ज़रा ह्यातू का डर था......

न्याज़मियाँ : जवान लड़का है, भड़कीली तबीयत का, और अक्ल नाम को नहीं, लेकिन तुम चिन्ता न करो, मैं आज ही उसे उसके ननिहाल भेज दूंगा।

(चलते हैं।)

घीसू : (फिर रोककर) न्याजमियां.......

(न्याज़मियां फिर रुकते हैं।)

-- : (समीप आकर प्रेम-भरे विनीत स्वर में) न्याजमियां मेरा कहा मानो तो तुम कुछ दिन के लिए कहीं चले जाओ, बाबा। गिरधारी दादा आज कल बड़े बगुला भक्त बने हुए हैं। म्यूनिसिपैलिटी के लिए खड़े होने जा रहे हैं अगली बार, सब जगह बरबस झंडे लगा दिये हैं उन्होंने। हालांकि स्वयं महात्मा गांधी ने कहा है कि मुसलमान चिढ़ते हों तो न लगाओ तिरंगे, पर इस समय उनकी कौन सुनता है ? ये सब तिरंगे देखकर किसी मुसलमान को जोश आगया और उसने दरगाह पर काला झंडा...

न्याज़मियाँ : तुम चिन्ता न करो, घीसू। क़लन्दर साईं की दरगाह किसी पार्टी का अखाड़ा नहीं बन सकती। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई—सबके लिए वह खुली है—इस पर कलन्दर साईं ही का झंडा झूलेगा, किसी जात, बिरादरी, पार्टी या कौम का नहीं। इस बस्ती के हिन्दू तो हमें अपने भाइयों से भी बढ़कर समझते रहे हैं।

(चले जाते हैं।)

घीसू : (वापस आकर अपनी जगह बैठते हुए, जैसे अपने आपसे) लेकिन इस खून-खराबी में तो भाई ही भाई का गला काट रहा है। कौन यह पूछता है कि तुम किस पार्टी में से

हो ? बस चुटिया, धोती, डाढ़ी या अचकन देखकर छुरा भोंक देते हैं।

[आकर फिर कुर्ता उठाता है, किन्तु फिर उसे रखकर समाचार-पत्र हाथ में लेता है। पर कुर्ते सीने अथवा पत्र पढ़ने में उसका मन नहीं लगता। उठता है, जाकर भैंस की पीठ पर प्यार से हाथ फेरता है, भैंस फरेरी लेती है और कीचड़ में लिथड़ी हुई दुम घुमाती है। दूसरे क्षण घीसू की कनपटी से लेकर गरदन तक उस कीचड़ का निशान बन जाता है।]

घीसू : (फिर भैंस की पीठ पर प्यार से हाथ फेरकर, दर्द भरी मुस्कान से) तुझ में और इन लोगों में कोई अन्तर नहीं ! अपने भला चाहनेवाले को ये बुरा समझते हैं।

[दूर गाड़ी के आने की आवाज़ आती है। दरगाह की ओर से, अर्थात् स्टेशन की भिन्न दिशा से, एक भैय्या भागा आता है और दो पैसे मुलिया के सामने फेंकता है।]

भैय्या : तनिक जल्दी मुलिया !

(मुलिया जल्द-जल्द पान लगाती है।)

— : (घीसू से) यह तुम क्या मूरखताई कर रहे हो, घीसू, झंडा काहे नहीं लगाते ? दादा बड़े गुस्सा रहे हैं। सभा हो रही है उनके आंगन मां। गिरगांव से उनकी मंडली भी आई हुई है। श्यामू और लकड़िया की हत्या ने हिला डाला है दादा को। तुम्हें बुलाया है उन्होंने सभा मां।

घीसू : मुझे नहीं जाना है उस सभा में।

भैय्या : तुम जानो, मुदा हम कहे देत हैं, गुस्सा बहुत खराब है दादा का।

[मुलिया पान बना कर देती है। उसे कल्ले में रखता हुआ वह भाग जाता है।]

घीसू : (कुर्ते से कनपटी का दाग पोंछते हुए) दादा और उनकी मंडली...न जाने संसार में इन दादाओं का कब अन्त होगा !

[फिर जाकर कुर्ते सीने का प्रयास करता है; पर काम में उसका मन नहीं लगता। मां बराबर कुर्ते सीती रहती है। एक कुर्ता उठाकर मुलिया को देती है।]

माँ : मुलिया ले, घीसू के तो चूतड़ नहीं टिकते। एक तू सी दे। दादा सिर हो जयगा। (घीसू से) देख बेटा, दादा जो कहित हैं, करले। उनसे बैर मोल लेकर हम ह्यां कितने दिन रहि सकित हैं ? झंडा लगाये ते जो कोई हमें मारने आयेगा तो दादा के ह्यां रहते, क्या वह बचकर जायेगा ?

घीसू : तुम तो पागल हो। हमें कोई क्या मारेगा ? पर ये सब झंडे लगाकर जो इन लोगों को चिढ़ाया जा रहा है, इससे फ़िसाद तो हो सकता है। हम न मरे, कोई और मरेगा। मैं इस हत्याकाण्ड में भाग नहीं ले सकता।

[समाचार-पत्र उठा लेता है और बरामदे के स्तम्भ से पीठ लगाकर पढ़ने लगता है।]

मुलिया : सारा दिन यह गजट बांचते हो और अपनों से बैर बांधते हो। दादा की डेरियों में काम करनेवाले भैय्यों के बारे में इस गजट में जो उल्टी-सीधी बातें छपी हैं, जानते हो दादा ने उनका कितना बुरा माना है ? (धीमे स्वर में) उनका सन्देह तुम पर है—मालूम है वे इस गजट को कैसा बुरा जानते हैं ?

घीसू : आत्याचारियों का भंडा तो यह पत्र सब से पहले फोड़ता है। दादा छोड़ चाहे सारी दुनिया इसे बुरा समझे, पर बातें इसकी सीधी दिल में उतरती हैं। इसी खून-खराबी को लो—सारे पत्र फ़िसाद की खबरें छापते हैं। उन्हें पढ़कर लगता है, जैसे मनुष्य नाम का जीव तो इस संसार से उठ ही गया है। इसी पत्र को पढ़कर पता चलता है कि नहीं, अभी धरती से मनुष्य का बीज-नास नहीं हुआ। इन पशुओं में मनुष्य अभी बाकी है। इस फ़िसाद में मुसलमानों ने हिन्दुओं को और हिन्दुओं ने मुसलमानों को बचाया है और कई बार जान जोखम में डालकर बचाया है।

[न्याज़मियां का लड़का, हयातल्लाह, अपने एक युवक साथी के साथ तेज-तेज बातें करता हुआ आता है।]

हयातल्लाह : इन सालों ने यहां तिरंगे लगाये हैं। ये बनिये हमें चिढ़ाते हैं। मैं भी मोमिन का बेटा नहीं जो दरगाह पर काला झंडा न लगाऊं! इन्हें भी पता चले कि यहां काफ़िर ही नहीं बसते, इस्लाम पर मर-मिटने वाले मुजाहिद भी बसते हैं।

(तेज-तेज चले जाते हैं।)

घीसू : सुन लिया! और तू कहती थी क्यों नहीं लगाते तिरंगा?

[दो हिन्दू तेज-तेज आते हैं। एक मुलिया के आगे दुवन्नी फेंकता है।]

पहला : दो पान और सिगरेट मुलिया (फिर अपनी बात जारी रखते हुए अपने साथी से)—मैं कब कहता हूं—वे न लगायें काले झंडे, न करें सरकार का विरोध?

हज़ार वार करें ! पर कुछ दम हो तो कांग्रेस की तरह अँग्रेज़ों से लड़ें ना, गोरी सरकार का विरोध करें ना, सड़ें न जेलों में जाकर...ब्रिटिश सरकार से मुकाबिले का एलान किया और हिन्दुओं पर पिल पड़े—कायरों की तरह छिपकर किसी गरीब मज़दूर, या निरीह भैय्या की पीठ में छुरी भोंक दी और बड़े मुजाहिद और शहीद बन गये ! यदि वास्तव में कांग्रेस हिन्दुओं की है तो इतनी वार उसने सरकार से मोर्चे लिये, दो-चार मुसलमान तो मारे गये होते ! यह लीगवालों का पहला मोर्चा है और कलकत्ते में सहस्रों निर्दोस मौत के घाट उतर गये और बम्बई में उतर रहे हैं। ये गोरी सरकार के गुर्गे हैं, गुर्गे !

दूसरा : वे लोग कांग्रेसियों पर कही इलज़ाम लगाते हैं ?

(मुलिया पान बनाकर देती है। पहला कल्ले में रखता है)

घीसू : **(समाचार पढ़ते हुए जैसे अपने आप से)** दोनों गोरी सरकार के हाथ में खेल रहे हैं।

पहला : **(पान चबाते और सिगरेट ओठों के कोने में रखते हुए)** अँग्रेज़ों की तो छाया से दूर भागते हैं और निहत्थे हिन्दुओं की पीठ में छुरे भोंकते हैं...यह आज कालबादेवी में क्या हुआ ? टैक्सी में मशीनगन रखकर बेगुनाह लोगों पर गोली चलाते गये ! वह दस बरस की लड़की, वह क्या कांग्रेस में थी ? और वे हिन्दू जुलाहे जिन्हें हिटलरी बर्बरता से इन कसाइयों ने उनकी झोपड़ियों में जिन्दा जला डाला, जिनके भागते हुए बच्चों को लाठियां मार-मारकर फिर आग में झोंक दिया, क्या वे कांग्रेसी थे ? पिछले फ़िसादों के भूले हुए हैं ये मुसलमान,

समझते हैं, गाजर-मूली की तरह हिन्दुओं को काट देंगे ! लेकिन मैं बता दूं—हिन्दुओं ने भी अपना संगठन कर लिया है। छः बरस से हमारा राष्ट्र-संघ हमें इन कसाइयों के हाथों से अपनी माओं-बहनों की इज्जत बचाना सिखा रहा है। अब यदि एक हिन्दू के छुरा लगा तो दस मुसलमानों के छुरे भोंके जायेंगे, एक हिन्दू बच्चा मारा गया तो दस मुसलमान-बच्चे मौत के घाट उतारे जायेंगे, एक हिन्दू देवी का अपमान हुआ तो दस मुसलमान औरतों की बेइज्जती की जायगी !

[मुलिया दूसरे को भी पान-सिगरेट देती है और दोनों जोश से बातें करते चले जाते हैं।]

घीसू : हिंसा...हिंसा...हिंसा.. .इन सब के सिर पर यह कैसी हिंसा सवार है ! इन्हें कौन बताये कि यह हिंसा तो अपना ही गला काटने के बराबर है ? मुसलमान बच्चों की हत्या क्या अपने बच्चों की हत्या नहीं ? मुसलमान औरतों का अपमान क्या अपनी मा-बहिनों का अपमान नहीं ?

माँ : (**कराहती हुई उठती है।**) मैं कहती हूं, घीसू, थोड़े दिन को अपने गांव क्यों न चले जायें ? इ्यां तो जिसे देखो उसके सिर पर खून सवार है !

(कराहती हुई फिर जाकर चारपाई पर लेट जाती है।)

मुलिया : पारो के बापू हम तो इसी घड़ी इ्यां से चल देंगे।

घीसू : कहां चल देंगे ?

मुलिया : अपने गांव, और कहां ?

घीसू : वहां क्या मुसलमान नहीं, या ऐसे हिन्दू नहीं ? देश में ऐसा कौन-सा गांव है जहां हिन्दुओं के साथ मुसलमान,

या मुसलमानों के साथ हिन्दू नहीं बसते ? आग जो नगरों में लगी है, उसकी लपटें क्या देहात में न पहुँचेंगी ? **(फिर जैसे अपने आप से)** छः बरस लड़ाई रही। नगर तो दूर, किसी गांव तक में फ़िसाद नहीं हुआ । अब महामारी की तरह यह मारामारी शहर-शहर क्यों फैल गयी ? ब्रिटिश सरकार जब चाहती है कि भाई से भाई लड़े और उसकी सेना के पांव हिन्दुस्तान में जमे रहें तो क्यों न यह सब खून-खराबी होगी ? **(फिर मुलिया से)** भागकर इससे जान न बचेगी, मुलिया !

मुलिया : तुमसे कौन माथा फोड़ेगा । दो अच्छर क्या पढ़ गये हो, गांधी बाबा के कान काटते हो ! बस तुम्हीं एक जान-पांडे हो, बाकी सब नेता तो जानों मूरख हैं ! तुम रहो ह्यां । मैं तो अपनी बच्ची को लेकर आज ही चली जाऊँगी ।

(पारो भागी-भागी आती है ।)

पारो : बापू......बापू......हमें एक काला पटुका दो......

मुलिया : काला पटुका.....काला पटुका क्या करेगी रे......?

पारो : हम भी काला झंडा लगायेंगे । बस्सू लगा रहा है काला झंडा अपने घरे मां ।

घीसू : घत् पगली......चल बैठ उधर !

[पारो अनमनी-सी जाकर दीवार के साथ बैठ जाती है। फिर अवसर देखकर भाग जाती है। मुलिया लालटेन ला, उसे जला कर लटका देती है । घोड़बन्दर रोड की ओर से कुछ लोग बातें करते आते हैं। शिब्बू उन सब से आगे है ।]

शिब्बू : यह भैय्या लोगों का गुण है, भाई ! जब चौंकते हैं जब

पानी सिर से गुज़र जाता है। अपने गिरधारी दादा और उनकी यह गिरगांव की मंडली जो कुछ आज कर रही है, यदि कुछ दिन पहले करती और न्याज़मियां और उसके उस सिर फिरे बेटे को बुलाकर डांट देती तो कभी इसकी नौबत भी न आती।

[घीसू के बरामदे से झिलंगा घसीटकर उस पर बैठ जाता है, शेष कुछ लोग उसके इर्द-गिर्द बैठ जाते हैं और कुछ खड़े रहते हैं।]

शिब्बू : आज भी बुला कर यह फ़ैसला कर लिया तो अच्छा रहा...आप लोग और दो दिन चुप रहते तो किसी दिन देखते कि आप की झोपड़ियां जली पड़ी हैं और आपके बीवी-बच्चे छुरों से घायल तड़प रहे हैं। बड़े ज़ालिम और कायर हैं ये लोग, भैया !

दूसरा : कुछ भी हो हम न्याज़मियां को ऐसा न समझते थे।

तीसरा : अरे, वह एक ही हरामी है ! दो पठान वह आज भी लाया है। मैंने इन अपनी आंखों से देखे हैं।

चौथा : और वह हयातू...वह उसका सिर-फिरा बेटा, कल मेरे सामने उसने हाथ भर का छुरा खरीदा। मैंने पूछा—"क्या करोगे इतना बड़ा छुरा खरीदकर ? सरकार पकड़ लेगी !" कहने लगा—"बकरे ज़िबह करूंगा और काफ़िरों की इस सरकार की ऐसी की तैसी !"

शिब्बू : **(क्रोध से एक हुंकार भरकर)** हूं ! तो वह हमको बकरे समझ रहा है ! लेकिन बेटा को पता चल जायगा कि बकरे सिंह भी बन जाया करते हैं ! वह करे पठान इकट्ठे......

घीसू : **(जो इस बीच में बराबर आगे बढ़कर कुछ कहने का प्रयास**

करता है।) अरे भाई, वे पठान तो चौकीदार हैं। उधर से डरकर इधर आ गये हैं।

पहला : जी हां, चौकीदार हैं ! जब यहां तुम्हारा और तुम्हारे बीवी-बच्चों का गला काटेंगे तब पता चलेगा. . .!

पाचवाँ : **(जो इस बीच में बराबर सड़क पर खड़ा देख रहा था)** अरे, वह देखो, हयातू दरगाह पर काल झंडा लगा रहा है !

शिब्बू : **(जैसे रबड़ के तार के खिचाव से उचक कर झिलंगे से सड़क पर जा खड़ा होता है।)** मैं न कहता था. . . . . . और उधर दादा भी सारी आबादी इकट्ठी कर लाये हैं !

(सभी उछलकर सड़क में आ खड़े होते हैं।)

— : है किसी में हिम्मत कि गिरधारी दादा आज्ञा दें और वह इनकार कर दे ! दादाओं के दादा हैं अपने गिरधारी दादा ! हर-हर महादेव !

[सामने से भी 'हर-हर महादेव !' का शोर होता है, जो क्षण प्रति क्षण समीप आता जाता है।]

— : इस हयातू के बच्चे को भी मालूम होगा कि हिन्दू बकरे ही नहीं जो हर फ़िसाद में ज़िबह किये जायें। वे भी सिंह बन सकते हैं।

घीसू : इस समय तो दोनों गीदड़ हैं।

[लेकिन कोई उसकी बात नहीं सुनता। पहला जोश से 'हर-हर महादेव !' का जयकारा बुलता हुआ आगे बढ़ता है। शेष उसका अनुकरण करते हुए उसके पीछे जाते हैं। घीसू सड़क में आ खड़ा होता है।]

— : (निमिष भर के लिए सड़क में खड़ा देखता रहता है।)

अरे ये लोग दरगाह को आग लगाना चाहते हैं। न्याज-मियां बेचारे......

(समाचारपत्र बरामदे में फेंक कर भागता है।)

मुलिया : (अपनी चौकी से छलांग लगाकर सड़क पर आ जाती है।) तुम पराये के फटे में क्यों पैर डारित हो ? मरने दो इन पापियों को !

(उसके पीछे जाती है।)

माँ : (उसके पीछे जाती हुई) "बेटा...बेटा...बहू...... बहू...! बहू"

[इसके बाद कुछ क्षण तक बैक-ग्राउंड में प्रतिहिंसा से पागल भीड़ के नारों, जयकारों, मारपीट और गाली-गलौज का शोर मचा रहता है। स्टेशन पर गाड़ी आकर रुकती है। उधर से भी लोग भागे आते हैं। न्याजमियां के साथ का एक पठान युवक अपनी जान के भय से अन्धा-धुन्ध भागा आता है और उसके पीछे हिंसक भेड़ियों की तरह लाठियां चाकू और छुरे लिये कुछ भैय्या और दूसरे लोग भागे आते हैं।

सहमे और डरे हुए पारो और बल्लू आते हैं और भुस की कोठड़ी में जा छिपते हैं, या यों कहिए कि पारो बल्लू को छिपा देती है। तभी दरगाह की ओर से लाठी चलने की आवाज आती है। अपने पीछे न्याज-मियां को लिये हुए लोहू में लथपथ, घायल घीसू लाठी से आक्रमण करनेवालों के वार बचाता और पीछे हटता हुआ प्रवेश करता है। रामू, बदरी और शिब्बू आक्रमण-कारियों के आगे-आगे हैं। साथ साथ सहमी, डरी, रोती मुलिया भी है। रामू के भरपूर वार से घीसू की

लाठी गिर जाती है और वह न्याजमियां को झोपड़ी के स्तम्भ और अपने मध्य लेकर सब के सामने छाती तानकर खड़ा हो जाता है ।]

रामू : क्यों अपनी मौत बुलाते हो घीसू ? छोड़ो इस मलेच्छ को ! जहां इसके साथी गये हैं, उहां इसे भी जाने देओ !

घीसू : तुम लोग नहीं जानते तुम क्या कर रहे हो ?

शिन्नू : (**उछलकर आगे बढ़ते हुए**) हम अच्छी तरह जानते हैं हम क्या कर रहे हैं !

बदरी : इनके लिए हम काफ़िर हैं और हमें मारना इनके मजहब में सवाब है । इनके लीडर काफ़िरों को मारने की तबलीग करते हैं और काफ़िरों को मारनेवाले गुंडों को शहीदों का दर्जा देते हैं । हमारे लिए भी ये मलेच्छ हैं और इन्हें यम के घर पहुँचाना महापुण्य है ।

घीसू : कोई काफ़िर नहीं, कोई मलेच्छ नहीं । सब इंसान हैं । सब भाई-भाई हैं !

न्याज़मियाँ : इस बूढ़े के लिए क्यों मरते हो घीसू ? तुम इन्हें अपनी प्यास बुझाने दो । मैं अब जीकर करूंगा भी क्या ? हयात की मौत के बाद......

घीसू : (**न्याज़मियां की बात का उत्तर न देकर पूर्ववत् रामू और बदरी से**) इस बुड्ढे ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?

बदरी : भिंडी बाजार के अनगिनत बच्चे-बूढ़ों ने मुसलमानों का क्या बिगाड़ा था ?

न्याज़मियाँ : मुसलमानों के इलाकों में हिन्दुओं के साथ यही हो रहा है । अपने गुनाहों का फल हमें भोगना होगा । तुम क्यों नाहक अपनी जान देते हो, घीसू ?

रामू : तुम हट जाव, घीसू, नहीं तो.........

घीसू : (सीना तानकर) तुम न्याज़मियां को कत्ल करना चाहते हो। तुम नहीं जानते कि सन् बाइस के फ़िसाद में इसी फ़क़ीर ने एक काफ़िर के बच्चे को मुसलमानों के पंजों से बचाया, पाला-पोसा और परवान चढ़ाया और वह काफ़िर तुम्हारे सामने खड़ा है! उसकी लाश से गुज़रकर ही तुम इसको ले जा सकोगे!

[उसी क्षण गिरधारी दादा का फेंका हुआ छुरा घीसू के सीने में आ लगता है और घीसू आधा सड़क और आधा बरामदे में गिरता है। मुलिया चीख़ मारकर उस पर आ गिरती है। दूसरे क्षण गिरधारी दादा सामने आता है। न्याज़मियां को घसीटकर अपने साथी को देता है और पल भर बाद बैक-ग्राउंड में न्याज़मियां के गिरने के साथ उनकी आवाज़..."खुदा तुम्हें नेक हिदायत दे!"...वायु-मंडल में गूंज जाती है।]

गिरधारी : (अचेत घीसू की ओर देखते हुए) लातों के भूत बातों से भी माना करते हैं? इतने जने मुंह बाये तक रहे थे और यह पटर-पटर बके जा रहा था! (नेपथ्य की ओर देखकर) क्यों कर दिया सफ़ाया उन सब पाजियों का?

[सभी जाते हैं। गिरधारी दादा एक ठोकर घीसू के लगता है।]

— : बड़ा हिमायती बना फिरता था न्याज़मियां का! देख लिया मजा गिरधारी दादा से वैर मोल लेने का?

[उपेक्षा से घीसू की ओर देखकर चलता है। घबराया हुआ रामू वापस भागा आता है।]

रामू : दादा, श्यामू और लकड़िया तो चले आवत हैं! और तुम कहत रहे...मदनपूरे मां तो कऊ भैय्या नाहिं मरा!

गिरधारी : हमें सवेरे ही फ़ोन आया था। किसी ने योंही उड़ा दी होगी !

रामू : (पछतावे के साथ) तो ई सब नाहक हुआ ?

गिरधारी : जो हुआ, अच्छा हुआ। मदनपुरे में न सही तो भिंडी बाजार और रहमान गली में बीसियों भैय्ये कत्ल हुए। इससे पहले कि शत्रु तुम्हारा गला काटे, तुम उसका टेंटुवा दबाओ ! भैय्ये तो जब तक न चौंकते जब तक वह हयातू उनके सीनों में छुरा न भोंकता। सुस्त बैलों को चलाने के लिए उनकी दुमों पर चिकोटी काटनी ही पड़ती है। इस बस्ती के भैय्यों को भी इसकी जरूरत थी। क्या हयातू ने छुरा न ख़रीदा था...? क्या वह पाजी बुड्ढा पठान इकट्ठे न कर रहा था...तो चलो...!

(उपेक्षा से घीसू को ओर देखकर चला जाता है।)

मुलिया : (उठकर चीखते और सिर पीटते हुए) और इस झूठी खबर पर तुम पापियों ने यह हत्याकांड मचा दिया ! (माथे पर दोहत्यड़ मारती है और घीसू से लिपटकर कहती है :) कहा न था जल में रहकर मगर से बैर न ठानो ! अब हमें किस के सहारे छोड़ कर जाइत हो !

[रोती है। मां आती है और घीसू को अचेत पड़े देखकर पछाड़ खाकर गिर जाती है।]

घीसू : (आंखें खोलता है। उठना चाहता है, पर उठ नहीं पाता। बड़े कष्ट से जबान ओठों पर फेरकर कहता है :) रोकर मेरे रास्ते को कठिन न बना, मुलिया ! यह रोने की नहीं, खुश होने की बात है। तेरा पति अपने निर्दोस भाई की पीठ में छुरा भोंकते हुए, या अपने भाई के बच्चे का गला काटते हुए नहीं मर रहा; वह मर रहा

है अपने भाई की रक्षा करता हुआ उसके कुटुम्ब को बचाता हुआ !

[फिर बेहोश हो जाता है। कुछ व्यक्ति हयात के शव को उठाये हुए लाते हैं। साथ-साथ गिरधारी दादा भी हैं ।]

गिरधारी : लिटा दो इस पाजी को इसके पहलू में ! जानते हो तुम सबको क्या बयान देना है ?

रामू : ई कि हयातू ने काला झंडा लगाया तब घीसू ने उसे टोका । इस पर हयातू और पठान छुरे लेकर दौड़ पड़े अऊर मारामारी होइ गई। हयातू ने घीसू को मारा ।

गिरधारी : हां ! हयातू ने घीसू को मारा ! (मुलिया से) जानती है, मुलिया, तुझे पुलिस को क्या बयान देना है ? यदि तुझे अपनी और अपनी बच्ची की जान प्यारी है तो कान खोलकर सुन ले—घीसू ने हयातू को काला झंडा लगाने से रोका और हयातू ने घीसू के छुरा भोंका । एक शब्द भी इधर-उधर किया तो जीती गड़वा दूंगा धरती में ! जानती है गिरधारी दादा को ! (अपने साथियों से) देखो सड़क के दोनों ओर पहरा लगा दो। कोई इधर न आने पाये । पुलिस आती होगी, मैंने फ़ोन कर दिया है।

(बदरी भागा आता है ।)

— : क्यों मिला बख्शू ?

बदरी : सब जगह ढूंढ़ा है, गिरधारी दादा, कहीं पता नहीं चला। न जाने कौन-से बिल में समा गया ?

गिरधारी : कोई बात नहीं । बिल से निकालकर सांप के बच्चे का सिर कुचला जायगा। जाओ तुम अपने-अपने पहरे पर !

में पुलिस को देखता हूं। इधर कोई न आने पाये। (जाते-जाते मुलिया से) याद रखना, मुलिया नहीं जीती गड़वा दूंगा !

(सब चले जाते हैं, घीसू फिर बड़बड़ाता है ।)

घीसू : आ रहा है, मैं देख रहा हूं, आ रहा है !

मुलिया : (रोते हुए) कौन आ रहा है ?

घीसू : (दांत पीसकर, उठने का प्रयास करते हुए) एक तूफ़ान आ रहा है ! भयंकर तूफ़ान आ रहा है ! जिसमें ये सब दादे, ये गुंडे, ये धर्म और जात-पांत के दर्प, ये गरीबों का लोहू चूसनेवाले पूंजीपति, ये भोले-भाले लोगों को लड़वाकर अपना उल्लू सीधा करनेवाले नेता—सब मिट जायंगे—एक नयी दुनिया बसेगी, जिसमें गरीबों का, मजदूरों का राज होगा, जहां हिन्दू-मसलमान न होंगे । काले-गोरे न होंगे । सब इंसान होंगे, भाई-भाई होंगे ।

[पारो सहमी-सहमी-सी भुस की कोठरी से निकलती है और डरी हुई मां से लिपट जाती है ।]

पारो : मां......

मुलिया : (रोते हुए उसे बांहों में भर लेती है ।) अरी तू कहां थी ? देख तेरे बापू का क्या हाल कर दिया निर्दइयों ने !

पारो : (भुस की कोठड़ी की ओर संकेत करके) बल्लू.....

घीसू : (बुझने से पहले दिये की लौ फिर लपक उठती है) मुलिया ! (उसकी ओर एक विचित्र प्रार्थना-भरी निगाहों से देखता है ।) मरनेवाले की एक अभिलाषा पूरी करोगी ?

मुलिया : (रोते हुए सिर हिलाती है ।) कहो !

घीसू : बल्शू को अपने बच्चों की तरह पालना; उसे इन हत्यारों के हाथ न जाने देना।

(मुलिया उत्तर नहीं देती, रोये जाती है।)

— : (उठने का प्रयास करते हुए) मुलिया !

मुलिया : (उसके सिर को आराम से धरती पर टिका देती है और सिसकती हुई कहती है।) बल्शू को मैं अपनी बेटी की तरह पालूंगी, मेरा विश्वास करो !

[घीसू एक बार आंखें खोलकर सन्तोष-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखता है, फिर उसकी आंखें बन्द हो जाती हैं। मां की बेहोशी टूटती है और वह रोती हुई और बेटा... बेटा.... पुकारती...उसकी ओर बढ़ती है।]

(सहसा पर्दा गिरता है।)

लेखक : स्त्री पात्रों की कमी हो तो मां के स्थान पर बूढ़ा दादा हो सकता है। उस रूप में थोड़ी-सी तब्दीलियां ज़रूरी होंगी।

बहनें

पात्र

रमा
सुहास
निशा
कान्ति
आभा

समय

सांझ

स्थान

दिल्ली में रमा के घर का कमरा

[कमरा न बहुत बड़ा है, न बहुत छोटा, ड्राइंग रूम या डाइनिंगरूम भी यह नहीं, शायद सोने का कमरा है, लेकिन इस समय उठने बैठने, साज-सिंगार करने, सोने और सामान रखने—याने सब तरह के कमरों का काम दे रहा है—एक ओर दो तीन ट्रंक और दो एक सूटकेस रखे हुए हैं—तो दूसरी ओर पलंग बिछा है। एक कोने में बिस्तर-बन्द गोल करके रखा हुआ है तो दूसरे में मैले कपड़ों का ढेर लगा हुआ है। कमरे के मध्य तीन चार कुर्सियां और एक तिपाई रखी है। अंगीठी पर शीशा व कंघी और टॉयलेट का दूसरा सामान रखा है। कमरा यद्यपि साफ़ है तो भी उस पर कुछ ऐसी अव्यवस्था सी छाई है, जिससे पता चलता है कि जो भी इस कमरे में ठहरा हुआ है स्थायी रूप से नहीं ठहरा है। रोशनदानों के अतिरिक्त दायीं दीवार में एक बड़ी खिड़की है।

पर्दा उठते समय रमा अंगीठी के पास खड़ी फाउंडेशन लोशन लगा रही है। तभी बायीं ओर गैलरी में खुलने-वाले दरवाजे पर हल्की सी दस्तक होती है।]

रमा : (सिंगार करते समय) कौन ?

(दस्तक फिर होती है ।)

— : कौन ? आ जाइए ।

[लोशन छोड़कर पफ़ उठाती है, किवाड़ खुलता है और सुहास प्रवेश करती है ।]

रमा : (पाउडर लगाते हुए मुड़कर) अरे सुहास ! कहो अच्छी तो हो ?

(जल्दी जल्दी पफ़ करती है ।)

सुहास : (उसके पास आकर उसके कंधे पर हाथ रखते और जैसे अनजाने शीशे में अपना मुख देखते हुए) मैं तो अच्छी हूं, तुम अपनी कहो, यह चिड़िया कहां से फांस लायीं ?

रमा : (पफ़ डिबिया में रखकर तनिक हैरानी से) चिड़िया ?

सुहास : यही अपने हरीश !

रमा : ओह, हरीश ?

[हंसती है और पाउडर की तह जमाकर गालों पर रूज लगाती है]

सुहास : कहां हैं वे ?

रमा : (रूज लगाते हुए) रति और रजनी ले गयी हैं अपने साथ कि चलो कुतुब दिखा लायें । शशधर भाई को भी साथ ले गई हैं और निशा बेचारी....

(हंसती है—छोटी छोटी घंटियों के स्वर सी मादक हंसी)

सुहास : (कमरे में चक्कर लगाते हुए) तो तुमने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दी !

रमा : (मुड़कर—एक गाल लाल और एक सफेद) प्रतिज्ञा ?

सुहास : **(पलंग पर जाकर बैठ जाती है ।)** तुम चाहे भूल जाओ, लेकिन मुझे सब कुछ, मानो कल की बात सा याद है । **(उठकर उसके पास आते हुए)** प्रतिज्ञा की थी न तुमने कि हम तो अपनी रुचि का साथी चुनेंगी (**दोनों हाथ रमा के कन्धे पर रखकर उसकी आंखों में आंखें डालते हुए**) ज्योंही रति ने मुझे बताया कि रमा बहन के साथ एक साहब आये हैं जो ऐसे हैं वैसे हैं तो मैं उछल पड़ी कि बस रमा फांस लायी कोई चिड़िया !

रमा : चिड़िया ! (**नन्हीं नन्हीं घंटियां फिर बज उठती हैं ।)** तुम अपनी कहो ! (**उसकी ठोढ़ी में चुटकी काटती है ।)** क्या हाल है तुम्हारे उनका, कुछ हिन्दुस्तान की आबादी में......

सुहास : (**जवाब में रमा के चुटकी लेते हुए**) हिन्दुस्तान की आबादी तो अब तुम बढ़ाओगी ! **(फिर हाथ छोड़कर)** मैं पूछती हूं, तुमने इस बात को इतना छिपाकर क्यों रखा ?

रमा : (**दूसरे गाल पर रूज लगाते और शीशे में देखते हुए**) मेरा ख्याल था, जब तक शादी हो नहीं जाती.....

सुहास : भई मैं तुम्हारे साहस की दाद देती हूं ! बड़ी प्रशंसा करती थी रति हरीश बाबू की । उसे तो जैसे प्रेम हो गया है उनसे......

रमा : हरीश से जो मिले प्रेम करने लगता है ।

(रूज लगाकर शीशे में देखती है।)

सुहास : **(कुर्सी खिसकाते हुए)** बुरा न मानना, ईर्ष्या की हल्की सी टीस मेरे दिल में उठी......कहां तुम और कहां हम !

(लम्बी सांस लेती हुई कुर्सी में धंस जाती है ।)

रमा : (जो रूज पर पाउडर की हल्की हल्की तह जमाने लगी थी, पफ़ हाथ में लिये-लिये उसके पास आकर) क्यों तुम तो.........

सुहास : (लम्बी सांस को बरबस दबाकर) अब छोड़ो, यह घाव न उधेड़ो, न हमारी ऐसी परिस्थिति, न वातावरण, और भाई सच पूछो तो हममें इतना दम-ख़म भी नहीं। पढ़-लिखकर भी हम तो हैं वही बेचारी गायें... जिसके हाथ मां बाप ने रस्सी दे दी......बस उसी के पीछे चल दीं।

(उठकर फिर कमरे में घूमने लगती है।)

रमा : (उसके पीछे पीछे जाते हुए) पर शादी के दिन तो तुम बड़ी........

सुहास : खुश थी ? (विषाद से हँसती है) यही कहना चाहती हो न तुम ! पर जब तो यह भी न मालूम था कि सच्ची खुशी होती क्या है ? (लम्बी सांस लेती है, और अपने दोनों हाथ रमा के कंधे पर रख लेती है।) एक ही डाली से लगे लगे, ऊबा उकताया पत्ता जब बयार के एक ही झोंके से गिर जाता है तो अपनी इस मुक्ति पर प्रसन्न, अनजान, अथाह भविष्य के कुतूहल से भरकर, अनायास उड़ा फिरता है (विषाद से मुस्कराती है और हाथ छोड़कर फिर चल पड़ती है।) नहीं जानता कि उसकी वह मुक्ति मृग-मरीचिका है, उसके भाग्य में तो सूख सूख कर मुरझाना ही लिखा है।

(आकर पलंग में धंस जाती है।)

रमा : (उसके पास जाकर) सुहा !

सुहास : और क्या ? (उसी विषैली मुस्कान से) न जाने

कितनी लड़कियों के सुख-सपने पहली रात ही छिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

रमा : यह तुम क्या कह रही हो ?

सुहास : (**बात का रुख बदलकर**) अरे भाई, हमारी बात छोड़ो, मैं तुम दोनों की प्रशंसा करती हूँ। (**हँसती है—जैसे अपने उस विषाद को उड़ाने के लिए**) तुम तो सचमुच हम जैसी कायरों के लिए आदर्श हो। मेरे ख्याल में हरीश की तरह शशधर भी निशा के होनेवाले......

रमा : (**भेद भरे स्वर में**) यद्यपि हमने किसी को बताया नहीं, तो भी यह ठीक है कि निशा ने भी अपना जीवन-साथी चुन लिया है। शायद हम दोनों साथ साथ शादी करें।

(**फिर जाकर सिंगार करने लगती है।**)

सुहास : सचमुच हमें जीवन-साथी ही की जरूरत है ! (**उठकर उसके पास आ जाती है।**) हमें स्वामी की जरूरत नहीं, जो निरन्तर हमें स्वामि-भक्ति पर लेक्चर देता रहे, या जो हमें चुन चुनकर ऐसी किताबें पढ़ने को दे, जिनमें पतिव्रता नारियों का गुणगान हो और पति को पत्नी का परमेश्वर बताया गया हो।

रमा : (**ओठों पर सुर्खी लगाते हुए, मुस्कराकर**) जो हमें इसलिए दुख दे कि उसे सह कर हम पतिव्रता कहला सकें, (**घंटिया फिर बजती हैं।**) स्वर्ग में अपने लिए सीट रिजर्व करा सकें।

सुहास : (**कुर्सी पर बैठते हुए**) हमें ऐसे स्वर्ग से नरक भला। स्वर्ग किसने देखा है, नरक तो रोज देखते हैं, वह नरक इससे बुरा न होगा। अच्छा है तुम इस नरक में नहीं फँसों।

(क्षण भर दोनों चुप रहती हैं ।)

सुहास : लेकिन तुमने किया कहाँ हरीश का चुनाव ? दिल्ली में तो......

रमा : (सुर्मेदानी रख कर कंघी बालों पर फेरते हुए) दिल्ली में इतने स्कैंडल (Scandal) हो गये थे कि रुचि का साथी पाना लगभग असम्भव हो गया था । इलाहाबाद में ऐसी बात न थी, इसलिए मैं जाते ही सफल हो गयी ।

सुहास : सफल तो तुम दिल्ली में भी हो जातीं, लेकिन तुम्हारी चंचल प्रकृति...........

रमा : नहीं सुही, मेरी चंचलता का दोष नहीं, लोगों ने सच्ची झूठी इतनी बातें उड़ा दी थीं कि कोई पास भी न आता था ! कोई आता भी तो डरा डरा सा.......

सुहास : (हँसकर) दिये की लौ से खिचकर...

रमा : दिये की लौ से खिचकर आने वाले पतिंगे तो डरते नहीं, बे-झिझक चले आते हैं और अनायास अपने आप को उस जलती, जगती आभा में जला देते हैं । ये आने वाले तो उस भूखे की तरह आते थे, जो स्वादिष्ट भोजन को देखकर लपकता तो है, पर झिझक जाता है कि कहीं विषैला न हो ।

(बाल बनाने लगती है ।)

सुहास : (हँसती है ।) तुम भी रमा...

रमा : (बाल बनाते बनाते सहसा रुककर) या उस आदमी की तरह, जो साँप को मस्त झूमते देखकर एकदम पटारी में बन्द तो कर लेना चाहता है, पर डर जाता है कि कहीं काट न ले ।

सुहास : साँप (हँसती है) तुम भी तो रमा····

रमा : दिल्ली की रमा सांप ही बन गयी थी सुही, नित्य नये स्कैंडल, सगे-सम्बन्धियों का विरोध, सखी सहेलियों की ईर्ष्या, सफलताओं का उल्लास और असफलताओं की यातना—इन सब ने मिलकर मुझे सांप ही तो बना दिया था। मेरे साथ निर्दोष निशा को भी सजा मिली, निन्दा हुई सो हुई, ऊपर से मौसी को सन्देह हो गया कि उसको भी मैं ही बिगाड़ रही हूँ। (हँसती है।) गेहूँ के साथ घुन भी पिस गया। तब मैंने सोचा कि दिल्ली को छोड़ देना चाहिए।

(जल्दी जल्दी कंघी करके जूड़ा बनाती है।)

सुहास : लेकिन प्रोफ़ेसर जैन तो बुरे न थ.....

रमा : अच्छे थे, पर मौसी किसी देवता को भी लातीं तो मैं इनकार कर देती।

(जूड़ा ठीक नहीं बंधता, इसलिए झटक देती है।)

सुहास : मौसी तो तुम्हारे लाभ ही के लिए ऐसा चाहती थीं।

रमा : मेरा लाभ। (व्यंग्य से हँसती है।) तुम मौसी को नहीं जानतीं, उनकी हर बात में अपना स्वार्थ होता है। कान्त ही से मेरी न टूटती, यदि मौसी उनके कान न भर देतीं। चाहती थीं उसे अपनी निशा के लिए। लेकिन उसे मेरे प्रेम का पता था, वह कैसे कर लेती ब्याह कान्त से। इसीलिए तो निशा को मैं प्राणों से भी बढ़कर चाहती हूँ। मौसी की लड़की होकर भी वह मेरे लिए सगी बहनों से बढ़कर है।

सुहास : (उठकर कमरे में घूमते हुए) पर सुना था कि मौसी रजनी की शादी करना चाहती थीं कान्त से....

रमा : (माथे पर बिन्दी लगाकर) तब रजनी शायद कान्त

को पसन्द न थी। मैट्रिक में ही तो पढ़ती थी। लम्बी सी नाक और गड्ढों में धंसे हुए कल्ले—अब निगोड़ी ने कैसा रूप निकाला है ? मुझे तो सच, एक आंख नहीं भाती। (जूड़ा बांधकर शीशे में देखती है।) तभी से मां बेटी में बैर ठन गया। निशा से मैंने साफ़ साफ़ कह दिया—मौसी मुझे जरा पसन्द नहीं। तुम्हारे लिए मैं प्राण दे सकती हूं, पर मौसी के लिए तिनका तक नहीं तोड़ सकती। मां और बहन में से एक को चुन लो ! और निशा ने मुझे चुन लिया। मेरे साथ चलने को तैयार हो गयी। दबी नहीं घर वालों से।

सुहास : तुम दोनों बहनें ही नहीं हो, सहेलियां ही नहीं हो, (शरारत से हंसती है।) इससे कुछ अधिक भी हो। रति तो कहती थी......

रमा : अब मैं तुम्हें क्या बताऊं, जीना दूभर कर रखा है रति और उसकी सहेलियों ने। रति और रजनी दोनों हरि और शशधर को उड़ाये फिरती हैं.....रति इतनी भावुक है कि मैं कुछ नहीं कह सकती उससे। जरा सी बात हो तो गज भर की थोथनी निकाल लेती है। बी० ए० क्या कर लिया है उसने कि बस किसी को कुछ गिनती ही नहीं।

(आकर कुर्सी पर बैठ जाती है।)

सुहास : कैसे परिचय हुआ इलाहाबाद में तुम्हारा हरीश से ?

रमा : मैंने वहां यूनिवर्सिटी में लेक्चररशिप ले ली थी....

सुहास : और बस फांस लिया हरीश को ! क्या करते हैं वे ?

रमा : इसी साल फर्स्ट डिवीजन में एम० ए० किया है। ऐसी धारा-प्रवाह अंग्रेज़ी बोलता और लिखता है कि उस पर अंग्रेज होने का सन्देह होने लगता है।

सुहास : रति तो कहती थी कि रंग-रूप में भी अंग्रेज मालूम होते हैं—नीली नीली आंखें......

रमा : हरीश की मां आस्ट्रियन और पिता हिन्दुस्तानी है।

सुहास : उनमें तुमने विचारों की एकता पाई ?

रमा : विचारों की एकता (हंसती है।) हरीश का लालन-पालन प्रायः अंग्रेजी ढंग से हुआ है—वह पति की अपेक्षा पत्नी के अधिकारों पर अधिक जोर देता है। वह नहीं मानता कि व्याह के बाद पत्नी की सत्ता पति में लीन हो जाती है। उसका विचार है कि व्याह के बाद पत्नी को अपनी सत्ता अक्षुण्ण रखनी चाहिए। उसे अपने व्यक्तित्व को पूर्ण करते रहना चाहिए। स्त्री पुरुष सागर की दो लहरों के समान हैं, चाहें तो साथ साथ मिलकर एक होकर चलें और चाहें तो विलग होकर अपनी अपनी धुन में वहे जायें।

सुहास : (रमा के दोनों कंधों पर हाथ रखते हुए) कितने ऊँचे विचार हैं—(दीर्घ-निश्वास भरती है) कितने ऊँचे और उदार ! रति ने मुझ से कहा था कि हरीश के विचार बड़े उदार हैं और जब वे उन्हें व्यक्त करते हैं तो उनकी आंखों में एक अपूर्व चमक आ जाती है।

रमा : (अपने दोनों हाथ सुहास के कंधों पर रखते हुए) प्रथाओं और परम्पराओं का हरीश पर कोई दवाव नहीं। वन के स्वच्छन्द पंछी की भांति वह पला और परवान चढ़ा है। जब भी मैंने उसे बातें करते, भाषण देते, वाद-विवाद करते सुना है, मैंने उसकी आंखों में उस ज्वाला की लपक देखी है, जो पुराने रीति-रिवाज एक ही दृष्टि से भस्म कर देना चाहती है। (सुहास के हाथ अपने

हाथों में ले कर उसकी ओर देखते हुए) मैं तुम्हें नहीं बता सकती कि मैं उसे कितना प्यार करती हूं...

सुहास : (हाथ छुड़ाकर और लम्बी सांस भरकर) तो कब हो रही है तुम्हारी शादी ?

रमा : शादी !

(पास ही खिड़की में जा खड़ी होती है ।)

सुहास : (उसके पीछे पीछे जाते हुए) हरीश बाबू से तुमने शादी का फैसला नहीं किया ?

रमा : फैसला ही समझो हां उसने बाकायदा प्रोपोज़ नहीं किया है । इशारों इशारों में तो वह कई बार कह चुका है । इसी विचार से मैं उसे यहां ले भी आयी ।

सुहास : सहेलियों को ईर्ष्या और डाह का शिकार बनाने ?

रमा : (मुस्कराकर) नहीं, निशा ने अपना साथी चुन लिया था । हमने सोचा कि शादी करेंगे तो दिल्ली ही में...लेकिन यह रजनी, रति और उनकी सहेलियां आराम से दो घड़ी बैठने भी दें उन्हें !...'हरीश भाई चलिए सिनेमा देखने चलें', 'शशधर भाई कार्निवाल लगा हुआ है'.... 'हरीश भाई'...'शशधर भाई'.....मानो हरीश और शशधर न हुए, खिलौने हो गये उनके ।

सुहास : खिलौने तो अब वे तुम दोनों के बनेंगे ।

रमा : (अरमान भरी नज़रों से बाहर खिड़की में देखती है।) नहीं सुही, मैं खिलौने नहीं चाहती, खिलौनों से बहुत खेल चुकी । मैं तो अब स्वयं एक खिलौना बनना चाहती हूं—चाहती हूं (अंगड़ाई लेती है ।) कोई खेलाये घुमाये, इधर से उधर पलट दे, घुमा दे, फिरा दे । (अचानक सुहास की ओर मुड़कर) सच !

(नन्हीं नन्हीं घंटियां फिर बज उठती हैं ।)

सुहास : तुमने हमसे मिलाया ही नहीं हरीश जी को, इतनी इच्छा हो रही है उनसे मिलने की ।

रमा : रजनी और रति छोड़ें भी उन्हें ।

सुहास : कोई फोटो नहीं है उनका ?

रमा : हां, फोटो है, उस कमरे में, इस कमरे में तो निशा ठहरी हुई है । मैं तो यों ही आ गयी यहां बाल संवारने । आओ, चलो उधर दिखा दूं ।

[दोनों चली जाती हैं । कुछ क्षण बाद निशा कान्ति के साथ बातें करती हुई प्रवेश करती है ।]

कान्ति : पर तुम रोकती नहीं उनको ?

निशा : (उठकर कमरे में घुसते हुए) मैंने तो कह दिया था रमा से कि तुम्हारी बहन घुमाये फिरती है शशधर को । वे बेचारे थके हुए हैं, बीमार हैं, किन्तु रमा तो क्या, रति अब मौसी के हाथ से भी निकल चुकी है । वे बेचारे हमारे कारण, इच्छा न होते हुए भी, घूमते फिरते हैं इन कम्बख्तों के साथ !

(कुर्सी पर बैठती है ।)

कान्ति : (कुर्सी घसीटकर उसके पास बैठते हुए) पर रजनी भी तो....

निशा : मुझे दोनों विस की गांठ लगती हैं । आंखों का पानी ही मर गया है बेशर्मों का । छोटे बड़े का भी कुछ लिहाज नहीं । मुझे तो रमा का ख्याल है, नहीं तो मैं पल भर न ठहरूं यहां । दस दिन नहीं हुए कि नाकों दम कर दिया है कमबख्तों ने, और फिर मौसी...

कान्ति : मौसी तो...

निशा : (उसकी बात काटते हुए) सदा यही कहती हैं, इसी ने बिगाड़ दिया रमा को (व्यंग्य से हँसती है।) जैसे रमा तो.......

कान्ति : (शरारत से) रोटी को 'चोची' कहती है। (फिर बात का विषय बदलकर) तो तुम आ गयीं फिर-फिराकर अपने थान पर, क्यों ?

(खुलकर हँसती है ।)

निशा : नहीं, कुछ दिनों के लिए आयी हूँ। इच्छा थी कि ब्याह कम से कम दिल्ली ही में हो। शशधर बाबू का तो विचार है कि शादी बिल्कुल सीधी साधी आर्य्य-समाजी ढंग से होनी चाहिए। इतनी टीम-टाम की जरूरत नहीं (हँसती हैं) क्या कहूँ बेहद सीधे साधे, भोले भाले आदमी हैं, लेकिन मैं नहीं मानी। मुझे तड़क भड़क पसन्द है। और कुछ न सही, एक शानदार पार्टी तो हो।

कान्ति : (हँसकर) सहेलियाँ तो जलें।

निशा : नहीं, यह बात नहीं, चार सगे-सम्बन्धी तो होने ही चाहिएँ। (दरवाजे में जाकर नौकर को आवाज देती है।) हीरे...ओ...हीरे।

हीरा : (दूसरे कमरे से) जी बीबी जी (भागता आता है।) जी !

निशा : चाय बनाकर जल्दी ला।

हीरा : जी अभी बनाकर लाता हूँ।

(जाने लगता है ।)

निशा : और रमा बहन को इधर भेज।

हीरा : जी बेहतर !

(भाग जाता है ।)

कान्ति : क्या शशधर बाबू के अपने कोई सगे-सम्बन्धी नहीं ?

निशा : (उठ कर कमरे में घूमते हुए) उनके माता पिता नहीं । दूसरे सगे-सम्बन्धी हैं, पर उनसे उनकी पटती नहीं । जमीन है, जायदाद है, नौकर चाकर हैं, पर इतना सीधा स्वभाव पाया है कि घर में आराम से बैठने के बदले नौकरी करते हैं । कहते हैं, "बेकार बैठे क्या करूं" ? और सगे-सम्बन्धी चाहते हैं—पियें, खायें, मौज उड़ायें कि उनके भी गहरे हों !

कान्ति : लेकिन यह तुम्हें सूझी क्या इलाहाबाद में जाकर ही...?

निशा : रमा और मैं ने प्रतिज्ञा की थी कि हम दोनों अपनी पसन्द का साथी चुनेंगी, चाहे फिर हमें इसके लिए दिल्ली ही क्यों न छोड़नी पड़े ।

कान्ति : प्राचीन काल की राजकुमारियों की तरह......

निशा : कुछ अजीब रूमानी ख्याल था और जब हमने सहेलियों में बैठकर बड़ हांकी थी तो यह सोचा भी न था कि अर्द्धचेतन में कभी यही धुंधला सा ख्याल लेकर हमें दिल्ली छोड़नी पड़ेगी ।

कान्ति : पर दिल्ली से तुम बुरी तरह ऊब गयीं थीं । मेरे ब्याह की बात याद है न—तुम कितनी उदास थीं !

निशा : रमा की दिन प्रति दिन बढ़ती हुई (हँसती है ।) 'ख्याति' की चपेट में मैं भी आ गयी और फिर जिन घरों में लड़कियों की इतनी भरमार हो, वहां बड़ी लड़कियों की आफ़त—ख़रबूज़े को देखकर ख़रबूज़ा रंग पकड़ता है । रति के अतिरिक्त चार बहनें तो रमा के हैं और रजनी को छोड़कर पांच मेरे । और फिर ये रति और रजनी भी कड़वी बेल की तरह बढ़ रही

हैं । हमारे साथ उनका भविष्य भी बिगड़ता, सो हमने छोड़ दिया दिल्ली को ।

(आकर उसके बराबर कुर्सी पर बैठ जाती है ।)

कान्ति : तुम दोनों जाकर एक ही दफ्तर में नौकर हुईं ?

निशा : नहीं रमा तो सदा एक बुद्धिजीवी की खोज में रही है, इसलिए इलाहाबाद पहुंचकर युनीवर्सिटी में लेक्चरर हो गयी, किन्तु मैं तो ऐसा साथी चाहती थी, जिसे मेरी ज़रूरत हो—मैं तुम्हें कैसे समझाऊं—जैसे बच्चे को मां की !

कान्ति : क्या कहती हो ? (हंसते हुए और उठकर पीछे से उसके गले में बाहें डालते हुए) जैसे बच्चे को मां की !

निशा : हां कान्ति । जैसे बच्चे को मां की ! एक दिन शशधर ने कहा भी—'तुम्हें देखकर निशा मुझे ऐसे लगता है, जैसे मेरी मां और बहन दोनों तुममें सिमट कर आ गयी हैं !'

कान्ति : (हंसकर) और पत्नी

निशा : स्त्री विवाह के पहले मां और बहन तो बन सकती है, लेकिन पत्नी नहीं, विशेषकर इस देश में ।

कान्ति : वह अब बन जायेगी । कहो कब होने जा रही है शादी ?

निशा : मैंने दफ़तर से महीने भर की छुट्टी ली है । इसी बीच में शादी करके वापस जाना चाहती हूं ।

कान्ति : पर तुम किस दफ़तर में नौकर हुईं, यह तुमने कुछ नहीं बताया ।

निशा : रेडक्रास में ! बात यह थी कि जैसा काम और साथी मैं चाहती थी, वह मुझे किसी ऐसी ही संस्था में मिल

सकता था—ऐसा साथी जिसे अपने आप से प्यार न हो, बल्कि जो वास्तव में प्यार चाहता हो। दिन के काम से थक कर जब घर आये तो घर का आराम चाहे। जो थोड़ा सा स्नेह पाकर भी सन्तुष्ट हो जाये। एहसान का बोझ लादता हुआ दूसरे के प्यार को न स्वीकार करे, बल्कि उसे दूसरे का उपकार माने! शशधर को मैंने ऐसा ही पाया है।

कान्ति : तो ऐसे हैं तुम्हारे शशधर बाबू......

(हंसती हुई जाकर फिर अपनी कुर्सी पर बैठ जाती है।)

निशा : (हंसती है) बच्चों ही की तरह बेपरवाह हैं। मैं जब पहली बार उनके यहां गयी थी तो दया की एक विचित्र भावना मेरे मन में उमड़ आयी थी। फ़र्नीचर पर मिट्टी की तह जमी हुई थी, बैठक की खूंटियों पर बिस्तर की पुरानी चादरें लटकी हुई थीं, हाथ मुंह धोने का एक नया तौलिया ढूंढ़ने में उन्हें काफ़ी देर लग गयी। सारा दिन लगा कर मैंने हर चीज करीने से रखी, पुराने कपड़े ढूंढ़कर इकट्ठे किये, सिरहाने का गिलाफ़, बिस्तरों की चादरें, मेजपोश टी-कोज़ी-कवर—सब कुछ बदला—शशधर उन बच्चों की तरह हैं, जो दिन भर पढ़, खेल, थक कर जब सांझ पड़े घर आते हैं तो बिना खाये पीये सो जाते हैं और मां को उन्हें जगा जगा कर खाना खिलाना पड़ता है।

कान्ति : भई हमारा तो उनसे परिचय करा दिया होता! हम भी देख लेते तुम्हारे इस बच्चे को। अब तो हम बंध गये हैं खूंट से, हम से तो तुम्हें किसी तरह का भय न होना चाहिए (हंसती है और उठ खड़ी होती है।) अच्छा तो अब मैं चलती हूं।

निशा : वह हीरा अभी तक चाय बनाकर ही नहीं लाया (दरवाज़े में जाकर आवाज़ देती है।) हीरे, ले भी आ चाय !

हीरा : (बाहर से) जी, अभी लाया !

निशा : अभी लाया, अभी लाया, जाने दूसरे जन्म में लायेगा (आते आते) अब आई हो तुम तो एक कप पीकर ही जाना।

कान्ति : मुझे चाय वाय की कुछ ऐसी इच्छा नहीं, मुझे क्लब जाना है।

निशा : अभी ले आयेगा। (फिर नौकर को आवाज़ देती है।) हीरे...ले आ जल्दी चाय !

हीरा : जी आया !

कान्ति : तुम्हें इतने दिन आये हो गये, लेकिन तुम क्लब में नहीं लायीं शशधर जी को ?

निशा : क्लब में ? (हँसती है।) मैं तो स्वयं तरस गयी हूँ उनसे दो बातें करने को। यह रजनी छोड़े भी उनका पीछा—'शशधर भाई फ़िल्म आया है, एकदम फ़र्स्ट क्लास'... 'शशधर भाई चलिए नुमायश देखने चलें'...'शशधर भाई'...होती है कोई शशधर भाई की ! रात को आते हैं दस दस, बारह बारह बजे और सवेरे बेचारे सोकर नहीं उठते कि यह चुड़ैलें सिर पर आकर सवार हो जाती हैं—वे ठहरे सीधे-साधे आदमी, अब क्या कहें उनसे ? रमा अपनी शादी का फ़ैसला कर ले तो मैं भी इस झंझट से छुटकारा पा जाऊँ !

कान्ति : पर रमा का और तुम्हारा ब्याह क्या एक ही दिन में होना तय हुआ है ?

निशा : सनक थी कि इकट्ठे शादी करेंगे और इकट्ठे एक शानदार पार्टी देंगे।

कान्ति : और इकट्ठे कहीं हनीमून मनायेंगे (हंसती है।) कोई फोटो ही दिखा दो उनका। न जाने अब वे लोग कब आयेंगे, मुझे तो जाना है।

निशा : हां, मैं फोटो दिखाती हूं।

[उठती है और ट्रंक से एलबम निकालती है। कान्ति अपना प्याला रख कर उसके पास जाती है। दोनों बड़ी तन्मयता से चित्र देखती हैं।]

कान्ति : आदमी तो सुन्दर हैं तुम्हारे शशधर ! चुनाव की दाद देती हूं। भरा पड़ा है एलबम उनकी तस्वीरों से, कोई इकट्ठा चित्र नहीं तुम दोनों का ?

निशा : है, पर वह अलग पड़ा है।

कान्ति : निकालो तो।

[निशा उसी ट्रंक से चित्र निकालती है और कान्ति को देती है।]

— : वाह कितना सुन्दर है ! इसे तुम मेंटलपीस पर रखो, ट्रंक में क्या बन्द करके रख छोड़ा है इसको ?

[रमा और सुहास आती हैं। सुहास के हाथों में भी एक चित्र है]

सुहास : मैं कहती हूं, तुम्हारी सब सहेलियां ईर्ष्या से जल उठेंगी। क्या उम्र होगी हरीश की ?

रमा : मेरी ही उम्र के होंगे।

सुहास : शायद तुमसे दो एक साल कम। (शरारत से मुस्कराती है।) लेकिन भई कुछ भी हो, चुनाव तुमने खूब किया है। अब इस तस्वीर को मेंटलपीस पर सजा दो।

कान्ति : यही मैं निशा से कह रही हूं।

सुहास : (चौंककर) ओह-हो ! श्रीमती कान्ति सलूजा भी

हैं यहां! कहो डार्लिंग क्या हाल चाल हैं ? तुम तो मिलने जुलने से भी गयी। मैं समझती हूं, अगर निशा न आती तो तुम्हारे दर्शन भी न होते।

कान्ति : तुम कौन दिखाई देती हो। रमा आ गयी तो तुम्हें भी देख लिया। नहीं चाँदनी चौक, कनाट पैलेस, काफ़ी हाउस—कहीं भी तो नजर नहीं आतीं तुम।

निशा : इनके श्रीमान इन्हें शीशे की अल्मारी में बन्द करके देखते रहना पसन्द करते हैं।

[सब हँसती हैं, चाय आ जाती है और नौकर मेज पर चाय रखता है।]

सुहास : क्या किया जाय ? जीवन बिताने के लिए ये समझौते करने ही पड़ते हैं। मैंने तो क्लब का नाम आज तुमसे सुना है। सब कुछ मानो सपना होकर रह गया। दादी जी किसी को घर से निकलने ही नहीं देतीं और हमारे घर में दादी जी का राज है।

निशा : पर धन-सम्पत्ति की तो कमी नहीं दादी जी के राज में!

सुहास : धन-सम्पत्ति बैंकों या हवेलियों में रहती है। बैंकों में जमा संपत्ति यदि किसी को लाभ पहुँचा सकती है तो मुझे भी पहुँचा रही है। (विषैली हँसी से) हम स्त्रियां भी तो इसी धन-सम्पत्ति का रूप हैं। धन को बैंकों में बन्द करके रखा जाता है, हमें हवेलियों में! (कान्ति से) तुम तो प्रसन्न हो ? तुम्हारी सैर, तमाशे, खेल तो उसी तरह हैं ?

कान्ति : हम तो किसी के दबैल नहीं बसते। उन्हें कुछ टेनिस वेनिस का इतना शौक नहीं, क्लब-क्लब को भी वे कुछ ज्यादा पसन्द नहीं करते, पर मैंने तो साफ़ कह दिया

सलूजा साहब से कि यह सब कुछ मुझे घुट्टी के साथ मिला है, इन सबसे एकदम किनारा कर लेना मेरे बस की बात नहीं। कई बार खीझते हैं, पर मैं तो रोज सैर को जाती हूं।

[नौकर चाय लगाकर चला जाता है। तस्वीरें मेंटल-पीस पर रखकर सब तिपाई के पास आ खड़ी होती हैं।]

निशा : (चाय बनाते हुए) पर इस तरह घरेलू सुख......

कान्ति : एक मरीचिका है, जितना उसके पीछे भागो, वह दूर होता जाता है। मैंने उसके पीछे भागना छोड़ दिया है। जिसे लोग घरेलू या वैवाहिक सुख कहते हैं, वह शायद मेरे भाग्य में नहीं......पर सुख मुझे प्राप्त है।

निशा : (प्याला उठाते हुए) यदि ब्याह का सुख ही न हो, तो ब्याह से लाभ ?

कान्ति : यह बेड़ी समाज के कोप से बचने के लिए है।

निशा : त्याग से दुखमय घरेलू जीवन भी सुखमय और...

कान्ति : त्याग (ठहाका मारकर हंसती है—व्यंग्य और कटुता से भरा ठहाका) उसका मूल्य सुही से पूछो! इसने कितना त्याग नहीं किया, पर हुआ प्राप्त उसे घरेलू सुख ?

सुहास : घरेलू सुख (विषाद से हंसती है।) शायद तुम सच कहती हो, मरीचिका है!

निशा : पर इस तरह आत्मिक-शान्ति कहां मिलती है ?

कान्ति : उस शान्ति से लाभ, जिसके गर्भ में बेचैनी की आंधी निरन्तर चल रही हो ? सुही की सूरत मेरी बात का समर्थन करेगी।

रमा : (जो इस बीच में बराबर बहस सुनती और कुर्सी पर बैठी चाय की चुसकियां ले रही है।) पर सुही के मामले

में तो आरम्भ ही ग़लत हुआ। घरेलू सुख के लिए यह ज़रूरी है कि पहले अपनी रुचि का साथी ढूंढ़ा जाय। ऐसा, जिससे आपको हमदर्दी हो, प्यार हो और जिसे आपसे हमदर्दी और प्यार हो। फिर त्याग में भी सुख मिलता है। तब यदि कोई त्याग भी किया जाता है तो अपने ही लिए किया जाता है, या फिर उसके लिए, जिससे हमको प्यार होता है।

निशा : जिसके लिए त्याग करने में हमें स्वयं सुख मिलता है। रमा ठीक कहती है, सुही के मामले में तो आरम्भ ही ग़लत हुआ।

रमा : अरे भाई खड़े खड़े क्या बातें कर रही हो? निशा, ज़रा चाय का पानी और मँगाना।

सुहास : नहीं रमा, तुम्हें देखने का अरमान था, सो देख लिया। और चाय के फेर में न पड़ो, यदि चाहती हो कि मुझे जाकर बीस बातें न सुननी पड़ें तो मुझे छुट्टी दो। तुम्हारे हरीश बाबू को देखने की लालसा थी, सो जिस दिन तुम ब्याह का निमन्त्रण भेजोगी, आकर देख जाऊँगी। अब मुझे जाने दो। दादी जी का स्वभाव तुम जानती हो। अच्छा भई निशा, भगवान करे...

रमा : (उठकर) चलो तुम्हें नीचे तक छोड़ आऊँ। तुमसे तो जी भरकर बातें ही नहीं हुईं।

सुहास : अरे भाई, यह शिष्टाचार छोड़ो रमा! बैठो बैठो, मैं फिर अवसर पाकर आने की कोशिश करूंगी। अच्छा नमस्कार!

[दोनों हाथ जोड़कर माथे से लगाते हुए मुड़ती है। कान्ति भी निशा की ओर हाथ बढ़ाती है।]

निशा : तुम तो बैठो कान्ति, अभी दो चार मिनट !

कान्ति : न भाई, मैं तो अब जाऊँगी। पापा ने आज रमेश को इनवाइट किया है टेनिस पर ! निराशा होगी उसे, यदि मैं न गयी। फिर आऊँगी।

(जल्दी जल्दी दोनों से हाथ मिलाती है।)

— : (जातेहुए दरवाजे से) चियरिओ !

निशा और रमा : चियरिओ !

निशा : (सुहास और कान्ति के चले जाने के बाद) भगवान को लाख लाख धन्यवाद है कि हमने इस मामले में आरम्भिक गलतियां नहीं कीं और चाहे देर से सही, पर ठीक चुनाव किया।

रमा : मैं हरीश के लिए बड़े से बड़ा त्याग कर सकती हूँ।

निशा : और मैं शशधर के लिए ! इस ब्याह के झंझट से छुटकारा पायें तो वापस इलाहाबाद चलें।

रमा : जाने कान्ति को किस तरह इन बातों में आनन्द मिलता है। मैं तो थक गयी यह खेल खेलकर ! बस इलाहाबाद चलकर अपनी छोटी सी गृहस्थी बसायें।

निशा : (कल्पना हो कल्पना में जैसे उस गृहस्थी में पहुंच गयी हो) न अनबन हो, न गुस्सा हो, न भिड़की हो, न गाली हो ! सुख और शान्ति से जीवन बीतता चला जाय...गंगा की लहरों पर मन्द मन्द बहनेवाले किसी बजरे की भांति—बिना छलके, बिना डोले, चुप चाप, हिलोरें लेते हुए।

रमा : दोनों इकट्ठे एक बंगले में रहेंगी, मौसियां जो न कर पायीं, वह हम करेंगी, ड्राइंगरूम कामन रखेंगी और मेंटलपीस पर (अंगीठी के पास जाकर एलबम से चित्र

निकालते हुए) पहले शशधर की तस्वीर होगी, फिर तुम्हारी, फिर हरीश की होगी, और फिर मेरी... (सजाती है।) इस तरह !

[सन्तोष से तस्वीरों को ओर देखती है। दरवाजे से नन्हीं आभा झांकती है, जो कुछ देर से वहीं खड़ी उनकी बातें सुन रही है।]

आभा : दीदी, अब हरीश भाई के साथ तो रति बहन की तस्वीर लगा दो।

रमा : (मुड़कर क्रोध से) आभा !

आभा : हरीश भाई और रति बहन का ब्याह हो गया है।

रमा : (उसके पास आकर उसके कंधे झकझोर कर) क्या ?

आभा : मुझे अभी अभी रति बहन की सहेली लूसी ने बताया है, वे तो पार्टी की तैयारियां कर रही हैं। महरोली जाकर आर्य्य-समाजी ढंग से मैरिज की है उन दोनों ने।

रमा : (लड़खड़ाते शराबी की भांति वापस जाते हुए) निशा !

निशा : (जैसे अपने आप से) पर वे लोग तो कुतब देखने गये थे (एक अज्ञात से भय से) शशधर कहां हैं ?

आभा : पहले उन्हीं का ब्याह हुआ।

निशा : ब्याह !

आभा : रजनी बहन के साथ।

निशा : (आंधी के वेग में पंख फैलाये विवश पंछी की भांति रमा की ओर आते हुए) रमा !

(सहसा दोनों एक दूसरे को बांहों में भर लेती हैं।)

(पर्दा गिरता है।)

पात्र

शांतिलाल

छाया

रेखा

उषा

मां

समय

सायंकाल साढ़े-सात
बजे। घरों में लैम्प रोशन हो चुके हैं।

स्थान

शान्तिलाल के घर का
कमरा, जो ड्राइंग-रूम का भी काम देता है।

[तीन दरवाजे ड्राइंगरूम में खुलते हैं। पहला बायीं दीवार में पीछे को है और छाया के कमरे को जाता है, जो ड्राइंग-रूम से तनिक दूर, घर के पिछवाड़े की ओर है । दूसरा उसी दीवार में इधर को है और आंगन में खुलता है, जिधर से रसोई-घर और ड्योढ़ी को जाने के रास्ते हैं। तीसरा दायीं दीवार में इधर को है और आराम के कमरे में खुलता है ।

इस कमरे में एक मेज है, जिसके आसपास कुर्सियां पड़ी हैं । सामने अंगीठी की कारनिस पर फूलदान रखे हैं । मेज पर दो पुस्तकें चुनी हुई हैं । दरवाजों पर काले रंग के पर्दे हैं, जिन पर सफ़ेद मोर बने हैं । बिजली के तीन बल्ब ड्राइंग-रूम को रोशन कर रहे हैं ।

पर्दा उठता है। कमरा खाली है। क्षण भर बाद छाया बायीं ओर का पर्दा उठाकर अन्दर झांकती है। बैठे बैठे घिसटती हुई यहां तक चली आई है। एक पांव अन्दर रखती है और कुछ क्षण चौखट में ही बैठी रहती है । फिर दूसरा पांव अन्दर रखती है और

किवाड़ का सहारा लेकर खड़ी हो जाती है, पतली-दुबली, यक्ष्मा से पीड़ित । शरीर सूखकर कंकालमात्र रह गया है । अधर शुष्क हैं, गाल पिचक गये हैं, जबड़ों की हड्डियां उभरी हुई हैं । रंग काला पड़ गया है । शलवार और कमीज पहने है, परन्तु दोनों कपड़े उसके शरीर पर ढीले दिखाई देते हैं ।

धीरे-धीरे इधर-उधर देखती हुई बढ़ती है । सिर में चक्कर आता है । एक हाथ से सिर को थाम कर दूसरे से मेज का सहारा लेती है और कुर्सी में धंस जाती है। सिर मेज पर रख लेती है । दो-एक बार मुंह पर रूमाल रखकर खांसती है, फिर धीरे धीरे सिर उठाती है । मद्धिम आवाज में जैसे अपने-आप बातें करती हुई बोलती है ।]

छाया : जब मर जाना है—सब-कुछ छोड़कर मर जाना है तो फिर यह ईर्ष्या क्यों, यह डाह क्यों ? आज न सही, कल, कल न सही, परसों, जल्द ही ज़िन्दगी का यह टिमटिमाता हुआ दीया बुझ जाने को है । फिर भविष्य के उस अन्धकार में टटोलने से लाभ ? कोई उसे रोशन करे । वह जगमगाती मशाल हो, या चकाचौंध पैदा करनेवाली बिजली, कोई हो—दीये को क्या ? बुझे हुए दिये को क्या ?

[दीर्घ निःश्वास छोड़ती है । जोर की खांसी आती है । मुंह पर रूमाल रखकर सिर मेज से लगा लेती है । कुछ देर बाद फिर धीरे धीरे सिर उठाती है । मुख और उतर गया है । उसी तरह अपने-आप से]

— : नहीं, देखूंगी । अपने हाथों बनाये हुए कल्पना के गगन

चुम्बी महलों को अपने सामने जलते हुए देखूंगी ! उन्हें जलने से बचा तो न सकूंगी; पर चुप भी कैसे बैठी रह सकूंगी, किसी का घर धड़ाधड़ जल रहा हो और वह मजे-से चुपचाप बैठा रहे, कैसे हो सकता है ? वह उसे जलने से बचा न सकता हो, वह कुछ भी न कर सकता हो । वह देख तो सकता है—अपनी हसरतों, अपने अरमानों, अपनी चिर-संचित आकांक्षाओं को बर्बाद होते देख तो सकता है । वह न देखेगा तो पागल हो जायगा, न देखेगा तो मर जायगा ।

(खांसी आती है, रुमाल मुंह पर रखती है ।)

छाया : उसी कमरे में होंगे वे, मैंने उन्हें कुछ देर पहले इधर आते देखा था । इस कमरे में तो नहीं, जरूर उसी में होंगे ।

[उठती है । खांसी आती है । एक पग चलती है, फिर दूसरी कुर्सी पर बैठ जाती है । फिर उठती है और पागलों की तरह बायें कमरे के दरवाजे तक जाती है । पर्दा उठाकर देखती है । दरवाजा जरा-सा खुला है । झांकती है । तत्काल पर्दा छोड़ देती है । मुड़ती है । चेहरा और भी काला पड़ जाता है, आंखों के गढ़े और भी गहरे हो जाते हैं ।]

— : (तनिक आवेग से) रेखा, रेखा, बहन होकर, मां-जाई होकर मेरी चिता पर यह रँगरलियां ! तुम्हें लज्जा नहीं आती, तुम्हें लज्जा नहीं आती रेखा ! और तुम—तुम्हें मैं क्या कहूं ?

[तेजी से जाने लगती है । सिर में चक्कर आता है । कुर्सी का सहारा लेते-लेते गिर पड़ती है और अचेत हो

जाती है। कमरे का दरवाज़ा खुलता है। पर्दे को उठाकर तेजी से शान्तिलाल प्रवेश करता है, केवल एक कमीज़ और पतलून पहने है। कमीज़ का गिरेबान खुला है।

रसोई घर की ओर से माँ भागी आती है। हाथ में फुंकनी और मुंह पर कालिख के धब्बे हैं। घबराई हुई है, सांस फूल रही है। फुंकनी फेंकती है, छाया पर झुकती है। शान्तिलाल घुटनों के बल बैठा है।]

शान्तिलाल : (आवाज़ धीमी और कंठ में फँसी हुई) छाया!

माँ : इतनी दूर चलकर यह कैसे आ गयी—अपने कमरे से यहां तक! इसे तो चारपाई तक से हिलने की मनाही है।

शान्तिलाल : (छाया को अपनी बलिष्ठ बाहों में उठाता हुआ) मुझे क्या मालूम?

[छाया को उठाकर उसके कमरे की ओर ले जाता है। माँ उसके पीछे-पीछे जाती है। कमरे से धीरे-धीरे रेखा निकलती है—मँझोला कद, कोमल अंग, उन्नावी रंग की साड़ी में चलती-फिरती ज्वाला दिखाई देती है। मुख पर चिन्ता है। पग-पग चलती कमरे के मध्य आ जाती है।]

रेखा : (धीरे-धीरे, आपने-आप :) क्या हो रहा है, क्या होने को है? मैं तो बीमार बहन को देखने आयी थी, मैं तो उसका दुख बँटाने आयी थी। क्या मैं उसका दुख बँटा रही हूँ? (व्यंग्य से मुस्कराती है।) वाह! क...खूब दुख बँटा रही हूँ उसका मैं? मैं उसे मृत्यु के समीप लिये जा रही हूँ! उसके दुख की चिनगारी को ज्वाला बना रही हूँ!

(कुर्सी में धंस जाती है ।)

रेखा : (अत्यधिक पीड़ा से अपने आप :) रेखा, रेखा, तुझे क्या हो गया है ? तुझे क्या हो गया है ? तुझे अपने आप पर जरा भी काबू नहीं रहा ? तू बहे जा रही है, डूबे जा रही है और अपने साथ उसे भी बहाये जा रही है, उसे भी डुबाये जा रही है, जिसे तू बचाना चाहती है, जिसे तू बचाने को आई है ।

(उठती है । कमरे में बेचैनी से घूमती है ।)

—: (फिर रुकती है) नहीं, तुझे अपने-आप पर काबू रखना होगा । तुझे अपने-आप को हत्यारिन होने से बचाना होगा । यह दिल, इस पागल दिल के उद्गारों को रोक रखना होगा ! ये आंखें, इन प्यासी आंखों की तृष्णा को दबा देना होगा ! यह कान, इन रसिया कानों की लालसा को बांध रखना होगा ! तू देखकर भी न देखेगी, सुनकर भी न सुनेगी, अनुभूति रखने पर भी कुछ अनुभव न करेगी ।

[किवाड़ खुलने की आवाज आती है । रेखा चौंकती है । उठ कर तेजी से कमरे में चली जाती है । छाया के कमरे की ओर से शान्तिलाल दाखिल होता है । भृकुटी तनी हुई है, फ़र्श पर गिरी हुई एक पुस्तक को पांव की ठोकर मारता हुआ अंगोठी के नीचे गद्देदार कुर्सी पर बैठ जाता है । कुहनियां मेज पर टेक लेता है और हथेलियों पर ठोढ़ी रखकर सोचता है । उसी दरवाजे से मां प्रवेश करती है ।]

माँ : तुम इधर आ गये, उसके पास जाकर बैठो ।

शान्तिलाल : (चुप)

माँ : जाओ, उसके पास जाकर बैठो; वह बीमार है, मरने को है।

शान्तिलाल : (चुप)

माँ : मैं क्या चीख रही हूँ, क्या बक रही हूँ ?

शान्तिलाल : (उसी तरह बैठे-बैठे) मैं यह सब कुछ नहीं सह सकता!

माँ : क्या नहीं सह सकते ?

शान्तिलाल : यह रोज रोज का दुख, क्लेश, ताने तिश्ने । मैं थक गया हूँ, ऊब गया हूँ——

माँ : और हममें क्या नित-नयी शक्ति आती है ? हम नहीं थक गये, हम नहीं ऊब गये ? लेकिन यह कर्तव्य है, धर्म है । कल मैं बीमार पड़ जाऊँ, तो क्या मैं न चाहूँगी, कोई मेरे पास बैठे; मेरा हाल चाल पूछे; मेरी देख-भाल करे ? जाओ, वह रो रही है, उसे तसल्ली दो, धीरज बँधाओ ।

शान्तिलाल : मैं कहां तक धीरज बँधाऊँ ?

माँ : जैसे तुम सदा धीरज बँधाते हो !

शान्तिलाल : (बेजारी से) नहीं, मैं कुछ नहीं करता; मैंने कुछ नहीं किया । बस, फिर वही ताने तिश्ने, कोसने उलाहने (तनिक आवेग से) क्या मैंने महीनों उसकी सेवा नहीं की ? महीनों अपने स्वास्थ्य की चिन्ता न करके उसकी देख भाल नहीं करता रहा ? दिन के एक-एक बजे तक बिना खाये-पिये डाक्टरों के पीछे मारा-मारा नहीं फिरा; सैनेटोरियम में मैंने उसे नहीं पहुँचाया; पहाड़ पर मैं उसे नहीं ले गया—दिन का चैन और रातों की नींद मैंने हराम नहीं की ? (धीमे स्वर में) नहीं, मैंने कुछ नहीं किया, मैंने कुछ नहीं किया !

माँ : नहीं, तुमने बहुत कुछ किया है, और उसी बहुत-कुछ का तो शायद तुम बदला ले रहे हो—और उसकी आंखों के सामने ही.....हाय! शान्तिलाल, बेटा! तुमने उसकी दशा कैसी बना दी है? दो बरस में उसकी सेहत इतनी खराब नहीं हुई जितनी इन दो दिनों में हो गयी है। वह होश में है, लेकिन अच्छा था, वह बेहोश होती। मैं कहती हूँ, तुम यह व्यवहार छोड़ दो, तुम्हें वह अच्छी नहीं लगती तो उसे ज़हर दे दो, उसका गला घोंट दो।

शान्तिलाल : (जोश से खड़ा हो जाता है।) मैंने उसकी यह दशा कर दी है, व्यवहार मेरा बुरा है। बच्चा पैदा होने के बाद दिन-रात मैंने उसे काम में लगाये रखा, उसके सिर में दर्द बना रहने लगा, उसे मैंने नखरा बताया। उसे ज्वर हो आया, मैंने तानों की खूराकें दीं। टाइफॉइड के बाद मैंने उसे आराम न लेने दिया। आप को अपने दोष दूसरों के सिर मढ़ने खूब आते हैं। यदि मेरे व्यवहार के कारण ही उसे बीमार होना होता, तो अब तक वह मर चुकी होती। तीन बरस जो मेरे पास रही, तब तो उसका सिर तक न दुखा; यहां आकर ही उसे बीमारी क्यों चिमट गयी? उसकी बीमारी का उत्तरदायी मैं हूँ, या आप?

माँ : (शान्ति के साथ) बेटा, बीमारी न तुम्हारे बस की है, न मेरे। यह न लगाये लगती है, न हटाये हटती है। जिसके भाग्य में जितना दुःख लिखा है, उसे भोगना पड़ेगा—चाहे वह धनी हो, या निर्धन; सम्पन्न हो, या विपन्न!

शान्तिलाल : नहीं, मैं यह नहीं मानता। ये सब रोग हमारे लगाये ही लगते हैं। नये ब्याहे जवान यक्ष्मा से उतने क्यों नहीं मरते, जितनी नयी ब्याही लड़कियां? यह सासों की क्षुद्रता और निर्दयता है, जिसके कारण आज इतनी बहुए इस रोग के हाथों मौत के मुंह में जा रही हैं।

माँ : सासें निर्दयी होती हैं?

शान्तिलाल : नहीं तो क्या, दया का अवतार होती हैं! मैंने तुम्हें आज तक मां के रूप में देखा था, मां! यदि मैं जानता—इस दयामयी मां के कलेवर में निर्दयी सास भी छिपी हुई है तो मैं किसी अस्पताल में प्रसव का प्रबन्ध कर लेता! उसे बच्चा हुआ, उसकी देख-भाल न की गयी; उसे टाइफ़ॉइड हुआ, ठीक उपचार न किया गया। मैं आराम-आराम चीख़्ता रहा, उसे आराम न दिया गया। अब तुम्हीं बताओ, जिस लड़की ने मां-बाप के घर बहुत काम न किया हो, पति के घर बहुत काम न किया हो, वह बच्चे वाली हो, उसे पढ़ने का शौक़ हो, वह काम भी करे, दस-दस कमरों में बुहारी दे, ढेर-के-ढेर बर्तन मांझे, समय-कुसमय खाना खाय, फिर वह बीमार न हो, तो क्या हो?

माँ : टाइफ़ॉइड तो तुम्हारे भाई को भी हुआ था, मरते-मरते बचा था।

शान्तिलाल : वह तुम्हारा लड़का था, वह न थी। मैं कब कहता हूँ, तुम में प्रेम या दया की कमी है। मैं जानता हूँ, मैं बीमार हो जाऊं, तो तुम आकाश-पाताल एक कर दोगी, पर यदि बहू की तबीयत खराब हो, तो तुम

कहोगी—नखरे करती है, बहाने बनाती है ! मैंने लाख कहा कि मैं काम नहीं चाहता, उसे आराम करने दो; पर तुम लोग तो उसे मारने पर तुले हुए थे। तुम सबने मिल-मिलाकर उसे बीमार कर दिया, अब अभियोग मुझ पर धरा जाता है। जहर का घूंट तुम लोगों ने उसे पिलाया, खाली प्याला मेरे हाथों में ठूंसा जा रहा है।

(कुर्सी में धंस जाता है।)

माँ : (जोश में खड़ी हो जाती है) शर्म करो, शर्म करो ! हमें दोषी ठहराते तुम्हें लाज नहीं आती ? तुम्हें हमारी सेवा, सेवा नहीं मालूम होती। हम सारा-सारा दिन काम करते रहें, सारी-सारी रात जागते रहें, वह किसी गिनती में नहीं ! मैं कहती हूँ, जो हालत तुमने पैदा कर रखी है, उसमें तुम्हारी मां तो क्या, स्वयं धन्वन्तरि भी चल कर आजाये, तो उसे निरोग न कर सके। ज़रा अपने गिरेबान में मुंह डालकर देखो। सोचो, बीमार स्त्री देख भाल ही चाहती है—सूखी देख भाल ही चाहती है ? वह क्या चाहती है, यह तुम अच्छी तरह जानते हो, पर जानते हुए भी तुम अनजान बनते हो। सोच-समझ रखते हुए भी समझने की कोशिश नहीं करते !

शान्तिलाल : क्या, समझने की कोशिश नहीं करता ?

माँ : कि बीमार स्त्री क्या चाहती है ?

शान्तिलाल : क्या चाहती है ?

माँ : वह चाहती है कि उसका पति उसके पास रहे। उसके सिरहाने बैठे, उसकी देख भाल करे और सबसे बढ़कर, उसे तसल्ली दे। उसे बताये कि वह उसके साथ

है, चाहे दुनिया उसका साथ छोड़ दे, रिश्तेनाते-दार उसकी बीमारी से ऊब जायें, वह न ऊबेगा, उसके व्यवहार में अन्तर न आयेगा। वह उससे उतना ही प्रेम करेगा, जितना पहले करता था।

शान्तिलाल : क्या मैंने ऐसा नहीं किया, क्या मैंने लगातार कई रातें उसके सिरहाने बैठकर नहीं गुज़ार दीं ?

माँ : हां, गुज़ार दीं, और शायद इसीलिए, इसी जन्म में, उससे अपने एहसान का बदला भी ले रहे हो और जीते-जी उसके सीने पर सौत.....

[**कमरे से रेखा निकलती है और तेज़ी से आंगन की ओर जाती है। मुख उसका क्रोध से लाल हो गया है।**]

शान्तिलाल : रेखा !

[**उठ खड़ा होता है। रेखा नहीं सुनती, नहीं देखती, बढ़ जाती है।**]

शान्तिलाल : (**उसके पीछे जाते हुए**) रेखा, रेखा !

[**रेखा एक बार देखती है और चली जाती है। शान्तिलाल उसके पीछे जाता है।**]

माँ : उसे देखते जाओ, उसे तसल्ली देते जाओ, उसकी हालत ठीक नहीं, वह न बचेगी।

[**शान्तिलाल नहीं सुनता, चला जाता है। मां निराश होकर बैठ जाती है। दूसरे दरवाज़े से उषा प्रवेश करती है।**]

उषा : (स्वर कांपता सा है) मां...भौजी !

माँ : छाया ?

उषा : हां !

माँ : क्या है ?

उषा : तुम चलो।

माँ : कहो, कहो, घबराई हुई क्यों हो ?

उषा : मां, वह अपनी बड़ी-बड़ी आंखों से छत को, दीवारों को, मुझ को इस तरह देखती है कि मुझे डर लगता है। उसकी आंखों में आंसू हैं और मैं उसे धीरज नहीं बंधा सकती।

माँ : (दीर्घ-निःश्वास लेकर) अभागी बहू, मरते समय भी तेरी किस्मत में चैन नहीं ! (फिर दीर्घ-निःश्वास लेती है, उषा से) चलो !

[दोनों छाया के कमरे को चली जाती हैं। आंगन से शान्तिलाल रेखा का हाथ थामे प्रवेश करता है। आकर कुर्सी पर बैठ जाता है। रेखा खड़ी है, दूसरी ओर मुंह किये हुए है।]

शान्तिलाल : रेखा !

रेखा : (चुप)

शान्तिलाल : (रुद्ध कंठ से) रेखा !

रेखा : (फिर चुप)

शान्तिलाल : (रेखा के हाथ को झटक कर) रेखा, रेखा !

रेखा : (उसी भांति खड़े-खड़े) कहो !

शान्तिलाल : क्या कहूं? कुछ सूझता भी हो ! दिमाग में हलचल मची हुई है, कुछ सोच नहीं पाता, कुछ समझ नहीं पाता। मैं क्या कहूं ?

रेखा : तो कुछ न कहो, मुझे जाने दो।

शान्तिलाल : (रुद्ध कंठ से) रेखा, कुछ न कहूं ?

रेखा : कुछ कहो या मुझे जाने दो। मैं तो पूछती हूँ, कहो, कुछ कहो; बताओ, क्या कहना चाहते हो ?

शान्तिलाल : तुम भाग क्यों गयीं ?

रेखा : मैं जाना चाहती थी।

शान्तिलाल : नहीं, यह बात नहीं, तुम्हें मां की बातें बुरी लगीं; पर मैं कहता हूँ उनकी......

रेखा : नहीं, मुझे किसी की बात बुरी नहीं लगी। मैं स्वयं जाना चाहती हूँ।

शान्तिलाल : बहन को इस दशा में छोड़कर भी !

रेखा : मैं रहूँगी तो बहन न बचेगी।

शान्तिलाल : तुम चली जाओगी, तो मैं न बचूंगा !

रेखा : (व्यंग्य से मुस्कराती है।) तुम, (लम्बी सांस भरती है, शब्द उसकी सांस के साथ बाहर निकलते हैं:) ओह ! तुम बच सकते हो, तुम्हें कुछ न होगा। तुम जो एक प्रेयसी के कंकाल पर बैठकर दूसरी से प्रेम कर सकते हो ! कंकाल, हां...कंकाल ही तो.. बहन में अब क्या रखा है ? हड्डियों का एक ढांचा समझ लो। तुमने उससे कितना प्यार न जताया होगा ? कितने वादे न किये होंगे? कितनी बार कहा होगा, 'मैं तुम्हारे बिना न जी सकूंगा छाया, तुम्हारे बिना न बच सकूंगा।' अब वही तुम, अपनी उसी छाया के रहते, एक दूसरी से मुहब्बत जता रहे हो, उससे कह रहे हो—मैं न बचूंगा ! तुम पुरुष तुम्हारा कोई भरोसा नहीं, तुम पत्थर-दिल हो।

शान्तिलाल : रेखा, मैं पत्थर-दिल नहीं। दिल तो कब का पानी हो चुका है !

रेखा : पत्थर-दिल नहीं ! (व्यंग्य से हँसती है) ज़रा सोचो; ज़रा ख्याल करो; बहन का ख़याल करो; उसके बीते दिनों का ख्याल करो; अतीत की स्मृतियों का ख्याल करो; उसकी बीमारी का ख्याल करो; उसकी पल-भर को मिट जानेवाली हसरतों और अरमानों का ख्याल करो और फिर अपनी संग-दिली का ख्याल करो !

शान्तिलाल : तुमने मुझे सब कुछ भुला दिया है, तुमने मुझे पागल बना दिया है ।

रेखा : इसीलिए मैं जा रही हूँ, तुम पागल न बनो, होश में आओ, अपने कर्तव्य को पहचानो !

शान्तिलाल : रहो, जाओ मत । जिस तरह कहोगी, करूँगा । यों पागल बनाकर न चली जाओ, मैं कुछ न कर सकूंगा। तुम मेरे पास रहो, मुझे आदेश दो, मैं वैसा ही करता जाऊँगा ।

रेखा : तुम नहीं समझते—नहीं समझते मेरे रहने से बहन को कितना दुःख होगा । तुमने उसके वे शब्द नहीं सुने, उसके हृदय में उठते हुए तूफ़ान का अन्दाज़ा नहीं किया, उसे अचेत होते नहीं देखा—हाय ! मैं उस पर—अपनी बहन पर—बीमार, मरनेवाली बहन पर— इतने अनर्थ ढानेवाली हो गयी ! मुझे मौत क्यों न आ गयी, मैं मर क्यों न गयी ?—छोड़ दो, छोड़ दो, मुझे जाने दो !

शान्तिलाल : रेखा, आग लगाकर तुम जाना चाहती हो ?

रेखा : मैं कुछ नहीं जानती, मैं कुछ नहीं जानती । तुमने मुझे अपना कर्तव्य भुला दिया है । तुमने, तुम्हारी मीठी, मादक बातों ने, तुम्हारे जादू-भरे शब्दों ने, मुझे अपने-आप में

नहीं रखा। पर अब नहीं। मैं स्वयं जली जा रही हूं, यहां से जाकर भी मैं सुखी न रह सकूंगी, जलती रहूंगी, लेकिन मैं जाऊंगी। यह अनर्थ है, अन्याय है!

(हाथ छुड़ाकर भाग जाती है।)

शान्तिलाल : (उठकर उसके पीछे जाता है।) रेखा!

रेखा : (आंगन से) मेरे पीछे मत आओ, बहन के पास जाओ!

शान्तिलाल : रेखा, रेखा!

[उसके पीछे जाता है। पहले दरवाजे से मां प्रवेश करती है।]

माँ : शान्तिलाल, शान्तिलाल, वह तुम्हें बुलाती है, वह तुमसे कुछ कहना चाहती है!

[आंगन के दरवाजे से निकल जाती है। पहले दर-वाजे से उषा प्रवेश करती है।]

उषा : मां, मां!

[मां के पीछे आंगन को जाती है, कुछ क्षण स्टेज खाली रहता है, फिर आहिस्ता-आहिस्ता घिसटती हुई छाया प्रवेश करती है, किवाड़ का सहारा लेकर खड़ी हो जाती है।]

छाया : (उन्मादिनी सी) तुम न आओ, तुम न आओ। मैं स्वयं आती हूं। दोष मेरा है। तुम गुस्से हो, किन्तु मरनेवाली से कैसा गुस्सा? (खांसती है।) तुम्हें क्रोध होगा, मैंने तुम पर सन्देह किया, अपनी मां-जाई को अविश्वास की दृष्टि से देखा, लेकिन मैं मौत की अंधेरी खोह के मुंह पर खड़ी हूं। जाने कब अथाह अन्धकार में खो जाऊंगी। मैं होश में नहीं हूं। (जोर से खांसती

है ।) मुझे क्षमा कर दो । तुमने मेरी बहुत सेवा की, सात जन्म इसका बदला न चुका सकूंगी । ईश्वर करे, अगले जन्म में फिर तुम्हारी दासी बनूं और तुम्हारी सेवा करते-करते प्राण दूं ।

[सिर में चक्कर आता है, बैठते-बैठते गिर पड़ती है। मां आंगन से दौड़कर आती है ।]

माँ : छाया......छाया !

उषा : (भागकर आती है ।) भौजी......भौजी !

[छाया धीरे-धीरे आंखें खोलती है, सांस चढ़ी हुई है । मां उसका सिर अपनी गोद में रखती है ।]

छाया : मां, मेरे सब दोष क्षमा कर देना । मैंने तुम्हें बहुत दुख दिया है ।

माँ : आराम कर बेटी, तू थक गयी है ।

छाया : बस, अब आराम ही करना है, अनन्त विश्राम की गोद में सोना है, अपने पांव इधर लाओ मां, उनकी धूल अपने माथे पर लगाऊं ।

[मां रोती है, छाया उसके पांवों की धूल अपने मस्तक पर लगाती है ।]

-- : मैंने उन पर सन्देह किया मां, व्यर्थ ही उन्हें दोष दिया । उनसे कहना मुझे क्षमा कर दें, मैं मर रही हूँ ।

माँ : उस पापी का नाम न लो, राम-राम कहो ।

छाया : वे आयें तो उनके चरणों की धूल मेरे माथे पर लगा देना ।

(आंखें बन्द हो जाती हैं ।)

माँ : छाया....बेटी !

(रोने लगती है ।)

उषा : भौजी....भौजी !

(रोती है।)

माँ : (सिसकते हुए) बस, स्नेह समाप्त हो गया। दिया बुझ गया। उषा, रोशनी बुझा दो। इसे आंगन में ले चलें।

[उषा बिजली का एक बटन दबाती है, एक बल्ब बुझ जाता है, दो स्त्रियां प्रवेश करती हैं।]

एक : मर गयी !

माँ : (केवल रोती है।)

दूसरी : बेचारी ने बड़ा दुख पाया।

[उषा दूसरा बटन दबाती है। तीनों मिल कर छाया का शव ले जाती हैं। उषा तीसरी बत्ती बुझाती है। कमरे में अँधेरा हो जाता है, केवल आंगन और उधर के झरोखों से प्रकाश की क्षीण रेखाएँ ड्राइंग रूम को थोड़ा-सा रोशन रखती हैं। शान्तिलाल प्रवेश करता है।]

शान्तिलाल : चली गयी ! रेखा भी चली गई, छाया भी चली गई ! चारों ओर अँधेरा है—सिर्फ़ मैं इस अंधेरे में भटकने के लिए रह गया हूँ—छाया देवी थी, रेखा भी देवी है, मैं ही नीच हूँ, मैं ही पापी हूँ !

[कुर्सी में धँस जाता है—पर्दा अचानक गिर पड़ता है।]

———

नया पुराना

पात्र

देवचन्द (रंगमंच के बाहर गजेन्द्र)
प्रतिभा
रविदत्त
भाभी
कमल
अचल बैठा रहनेवाला व्यक्ति

समय

छः-साढ़े छः बजे सुबह

स्थान

देवचन्द के मकान का एक कमरा

[जिस कमरे में पर्दा उठता है, उसमें दायें-बायें दो दर्वाज़े हैं, दायीं दीवार का दर्वाज़ा काफी परे है और मकान के बाहर दूसरे हिस्से को जाता है, बायीं दीवार का दर्वाज़ा परे कोने में है और एक छोटी-सी कोठड़ी को जाता है, इसपर गहरे मूंगिया रंग का पर्दा है, जिसका रंग प्रातः के धुंधलके में स्याह दिखाई देता है। सामने की दीवार में दो खिड़कियां हैं, जिनके किवाड़ों में शीशे लगे हुए हैं, सूरज यद्यपि सामने के मकान के पीछे से निकल चुका है, तो भी खिड़कियों से उसकी रोशनी अभी कमरे में नहीं पहुंची। हां, किसी किसी किरण का प्रतिबिम्ब कभी कभी शीशों में झिलमिला जाता है। यों कमरे में अपेक्षाकृत अंधेरा है।

दायीं ओर के दर्वाज़े के साथ परे को अंगीठी है, जिस पर कपड़ा बिछा हुआ है और उस पर शेविंग का सामान, क्रीम की शीशी, पाउडर का डिब्बा—कहने का मतलब यह कि स्त्री-पुरुष दोनों के टॉयलेट का सामान रखा है। इस अंगीठी के परे, एक अल्मारी

है, जिसका एक पट खुला है और इसमें करीने से रखे हुए कपड़ों की तहें साफ़ दिखाई दे रही हैं इस अल्मारी के साथ एक खिड़की के पास आराम कुर्सी रखी है।

बायीं दीवार में, अन्दर कोठड़ी को जानेवाले दरवाज़े के इस ओर एक अल्मारी है, जिसमें ताला पड़ा हुआ है।

कमरे के मध्य तिपाई और दो कुर्सियां पड़ी हैं, जिन पर दो एक कपड़े बे-तरतीबी से रखे हुए हैं। सामने की दीवार में खूंटियां लगी हैं, जिन पर बेपरवाही से कपड़े टंगे हुए हैं।

पर्दा उठते समय कमरे में एक अव्यवस्था-सी दिखाई देती है, अंगीठी की चीज़ें भी अस्त-व्यस्त हैं, खूंटियों के कपड़े योंही एक दूसरे के ऊपर टंगे हुए हैं और फ़र्श पर भी एक दो कपड़े बे-तरतीबी से पड़े दिखाई देते हैं।

खिड़की के पास एक व्यक्ति आराम कुर्सी पर चुपचाप पड़ा है। चूंकि वह कोई हरकत नहीं करता और उस कोने में अपेक्षाकृत अंधेरा है, इसलिए पहली बार देखने पर वह नज़र नहीं आता। दूसरी बार ध्यान से देखने पर मालूम होता है कि उसने पूरे कॉलर की कमीज़ और पतलून पहन रखी है और धीरे धीरे सिगरेट पी रहा है।

तिपाई के बायीं ओर देवचन्द परेशान-सा बैठा है, ज़ाहिर है कि उसने अभी तक स्नानादि नहीं किया। रविदत्त यद्यपि दूकान पर जाने के लिए बिल्कुल तैयार है, तो भी अभी तक उसने बाल नहीं बनाये। शायद उनके मध्य

अचानक आरम्भ हो जानेवाले कटु-प्रसंग ने इस बात का अवसर ही नहीं दिया।]

रविदत्त : (**एक हाथ में शीशा और दूसरे में कंघी थामे हुए**) मैं कहता हूँ दवा जाओ सब, फिर ऐसा अवसर हाथ न आयगा।

(**फिर बाल बनाने लगता है।**)

देवचन्द : (**आश्चर्य और क्रोध के साथ**) रवि !

रविदत्त : (**बाल बनाना छोड़कर**) तुम तो पागल हो। पचास-साठ हज़ार के गहने कोई मामूली चीज़ नहीं। जीवन में ऐसे अवसर बार-बार नहीं आते।

(**फिर बाल बनाने लगता है।**)

देवचन्द : लेकिन वह तो अमानत है।

(**उठ कर बेचैनी से घूमता है।**)

रविदत्त : (**फिर बाल बनाना छोड़कर**) अमानत है तो क्या हुआ, इस समय तो वह सब तुम्हारे कब्ज़े में है और फिर कोई लिखा-पढ़ी नहीं, रसीद-पर्चा नहीं, गवाह-शहादत नहीं। मैं कहता हूँ बस पी जाओ। (**हँसता है।**) कोई तुम्हें पूछनेवाला नहीं।

(**फिर बाल बनाने लगता है।**)

देवचन्द : लेकिन यह तो धोखा है—कपट !

(**फिर घूमने लगता है।**)

रविदत्त : (**फिर बाल बनाना छोड़कर**) दुनिया में कौन धोखा नहीं करता ? ये बड़े बड़े साम्राज्य, बड़े बड़े राष्ट्र, बड़ी बड़ी संस्थाएं, बड़े बड़े व्यापार—ये सब क्या छल-कपट पर नहीं चलते ? बड़े बड़े नेताओं और विजेताओं की सफलता और ख्याति की नींव क्या कपट और छल

पर नहीं रखी गयी ? रात दिन तुम इस नारकीय स्कूल में झक झक करते रहते हो। मेहनत करते हो, मरते हो, आंखें और दिमाग़ फोड़ते हो और इस सारे श्रम के बदले में तुम पाते क्या हो ?—इज्जत और आराम की रोटी भी तो तुम्हें प्राप्त नहीं; ठीक तरह से खा-पी भी तो नहीं सकते; मैं कहता हूँ—बस पी जाओ ! दुनिया में धोखा वही है, जो उसकी आंखों से छिपाया न जा सके।

(फिर कंघी बालों तक ले जाता है।)

देवचन्द : **(हैरान है कि कौन सी बात सच्ची है और कौन-सी झूठी)** लेकिन मन की आंख—आत्मा की आंख......

(फिर कुर्सी पर बैठ जाता है।)

रविदत्त : **(फिर बाल बनाना छोड़कर)** मन और आत्मा का ख्याल रखनेवाले सदैव पिछली पंक्तियों में खड़े रहते हैं, निचली घाटियों में गिरे रहते हैं, आगे बढ़ना या ऊंचे उड़ना उनके भाग्य में नहीं।

देवचन्द : नहीं रविदत्त, यह अमानत में ख्यानत है।

रविदत्त : **(हँसता है।)** अमानत में ख्यानत...तुम बिल्कुल भोले हो मित्र ! दुनिया में हर बड़ा छोटे का, हर सबल निर्बल का और हर ऊंचा नीचे का माल छीनता है, उसकी अमानत में ख्यानत करता है।

देवचन्द : **(अपने मन से लड़ते हुए)** नहीं, नहीं, मेरा स्कूल...

(उठकर फिर बेचैनी से घूमने लगता है।)

रविदत्त : साठ हजार रुपयों से तुम ऐसे दस स्कूल चला सकते हो।

देवचन्द : **(रुककर)** बारह वर्ष के परिश्रम और दयानतदारी से हासिल की हुई मेरी प्रतिष्ठा......

रविदत्त : इस रुपये के बल पर सिर्फ दो वर्षों में तुम इससे कहीं अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकते हो।

देवचन्द : दयानतदारी.........

रविदत्त : रुपये का दूसरा नाम दयानतदारी है। (हँसता है।) गरीब की दयानतदारी भी बददयानती समझी जाती है।

देवचन्द : (अनुनय के स्वर में) तुम मुझे बहकाओ नहीं रवि! तुम रानी-हार वापस दे दो।

(रवि केवल हँसकर बाल बनाने लगता है।)

— : (रुककर) तुम नहीं जानते रवि, लिली की मां ने मुझ पर कितना विश्वास किया है! आखिर मेरी पोजीशन ही क्या है? एक साधारण प्राइवेट स्कूल का मामूली प्रिंसिपल! (हँसता है।) जिसे तुम मैनेजर भी कह सकते हो और टीचर भी। मेरे स्कूल में डेढ़ सौ लड़कियां पढ़ती हैं, माना, लेकिन सौ डेढ़ सौ लड़कियों को पढ़ानेवाले स्कूल-टीचर पर कौन इतना भरोसा कर सकता है? लिली की मां ने किसी तरह का संकोच किये बिना, विपद के समय, अपने आठ हजार के गहने मेरे हवाले कर दिये। नहीं, मैं उसके विश्वास को खोना नहीं चाहता।

(फिर बेचैनी से कमरे में घूमता है।)

रविदत्त : (बाल आदि बनाकर शीशे और कंघी को तिपाई पर रखते हुए) उसने अपने सब गहने तुम्हारे हवाले करने में परले दर्जे की मूर्खता की और उन सब को फिर उसे वापस देकर तुम उससे भी बड़ी मूर्खता का सबूत दोगे!

(अंगीठी से क्रीम लेकर मुंह पर मलता है।)

देवचन्द : (उसके पास जाकर) तुम ने जब रानी-हार मांगा था

तो भी यही कहा था कि उससे पूछने की क्या ज़रूरत है, तुम जो गहना चाहो अपने काम में ला सकते हो, लेकिन तुम्हें याद होगा, मैंने उस समय भी यही उत्तर दिया था कि जिसकी अमानत है, उसकी आज्ञा लिये बिना, मैं गहनों को हाथ नहीं लगा सकता। पर उसका विश्वास तो देखो, उसने कहा—"भाई साहब मुझ से पूछने की क्या ज़रूरत थी। सब गहने तो आपही के पास हैं। जो चाहते उठा कर दे देते।" (फ़िर कमरे में घूमते हुए) यह सब क्यों हुआ ? उसने मुझ पर क्यों इतना विश्वास कर लिया ? तुम शायद नहीं समझ सकते। यह सब विश्वास, यह सब भरोसा मैंने बारह साल के कठिन परिश्रम से हासिल किया है। क्या तुम चाहते हो, इतने परिश्रम से हासिल किये हुए विश्वास-धन को मैं लोलुपता के एक क्षण में गँवा दूँ ?

रविदत्त : (कोट पहनता हुआ हँसता है।) अरे किसका विश्वास और किसका भरोसा ! लिली की मां सब गहने तुम्हें न देती तो और क्या करती ? यदि उसके पास गहने रहते तो उसका वह व्यसनी पति अब तक उन्हें कब का ठिकाने लगा चुका होता। उसने तुम्हें दे दिये, तुम्हारे पास उनके बचने की सौ में से एक विस्वा तो आशा थी, उसके यहां तो इतनी भी न थी ! कमल कहता है.....

देवचन्द : (लगभग चीख़कर) कमल ! वह सिर-फिरा लेखक—उसकी संगति ने तुम्हें इतना गिरा दिया है कि आज तुम बददयानती को ख़ूबी समझने लगे हो। हरि कृष्ण की दुकान से मैंने उसे बीस रुपये की किताबें लेकर दीं—आज एक साल होने को आया है, उसने एक पैसा तक

नहीं दिया, दुकानदार के तगादों से नाक में दम आ गया। मैंने कमल से उसका हिसाब चुकाने को कहा। हंसकर बोला, "इन पूंजी-पतियों के रुपये मार लेना अनुचित नहीं।" आखिर वे रुपये मुझे देने पड़े। छल, कपट, धोखा, फ़रेब, बददयानती, बदमाशी, जालसाज़ी-- हरेक के लिए वह अपने प्रगतिशील फ़लसफ़े से कोई न कोई दलील निकाल लेता है। उसके ख्याल में मानव छली और कपटी के सिवा कुछ नहीं। कमल प्रगतिशील नहीं, अगतिशील है। प्रगति के नाम पर कलंक है!

रविदत्त : **(कपड़ों की अल्मारी में रूमाल ढूंढते हुए)** तुम्हारे भाग्य में असफल रहना लिखा है!

देवचन्द : बाह्य सफलता ही सब कुछ नहीं, आन्तरिक सफलता भी कोई चीज़ है। बाह्य शान्ति की अपेक्षा मैं आन्तरिक शान्ति को अधिक महत्त्व देता हूं।

(कमरे में तेज़ तेज़ घूमता है।)

रविदत्त : **(शीशे में देखकर टोपी को सिर पर सजाता हुआ)** यह कायरों का फ़लसफ़ा है।

देवचन्द : **(पलटकर)** फ़लसफ़ा छोड़ो! तुम यह बताओ कि रानी-हार वापस दोगे या नहीं?

(रवि केवल हंसता है।)

रविदत्त : देखो चार महीने तुम्हारी शादी को हो गये, मैंने स्वयं इस बीच में तुम्हें कुछ नहीं कहा, पर अमनात तो अमानत है, अब जहां से उसे लिया है, वहीं उसे रख देना चाहिए।

(टोपी सिर पर सजाकर रवि केवल हंसता है।)

देवचन्द : **(दुख और क्षोभ के स्वर में)** तो क्या तुम सचमुच रानी-हार नहीं दोगे? देखो, इतनी देर से हम इस मकान

में इकट्ठे रहते आ रहे हैं। किसी दूसरे को यह भी नहीं मालूम हुआ कि हम सम्बन्धी नहीं, केवल मित्र हैं। सब हमें भाई-भाई समझते हैं। दुख में, सुख में हमने एक दूसरे का साथ दिया है। किसी तरह का झगड़ा, किसी तरह की लड़ाई हमारे इस सम्बन्ध को नहीं तोड़ सकी—तो क्या तुम इस कम्बख्त रानी-हार को दस वर्षों की मित्रता के मध्य एक भयानक खाड़ी बना दोगे ? (**भरे हुए गले से**) रवि......रवि......!

(**कमल प्रवेश करता है ।**)

कमल : क्या बात है ? किस बात पर बहस हो रही है ?

रविदत्त : अरे है क्या, इसके..........

देवचन्द : (**चीख़कर**) रवि !

कमल : मैं पूछता हूँ, तुम दुकान पर कब जाओगे ? मैं माँ जी को वहाँ बैठा आया हूँ और दूसरे रोगी भी तो बैठे हैं वहाँ ।

रविदत्त : (**कोने से छड़ी उठाकर चलता हुआ**) क्या हाल है उनका ? (**घूमकर**) देव, तुम भी उठो, नहाओ, कपड़े पहनो, तुम्हारे स्कूल का भी तो समय हो गया है ।

[**रवि कमल के साथ चला जाता है । देवचन्द कुर्सी में धँस जाता है और मस्तक पर हाथ रखकर सोचने लगता है । प्रतिमा प्रवेश करती है ।**]

प्रतिमा : आप अभी तक बैठे हैं, स्कूल नहीं जायेंगे क्या ? और मैं नाश्ता लाने में देर कर दूँ तो आकाश सिर पर उठा लेते हो !

[**देवचन्द दूसरा हाथ भी मस्तक पर रखकर और भी निमग्नता से सोचता है ।**]

प्रतिमा : चलिए, नहाइए, धोइए, खाना खाइए ! भाई को चाबियाँ भिजवाइए कि वह समय पर स्कूल खोले ।

[देवचन्द लम्बी सांस भरकर विवशता से पीछे को लेट जाता है। उसका सिर कुर्सी की पीठ पर और बाहें दोनों ओर बेबसी से लटक जाती हैं। फिर कुछ क्षण बाद वह उठता है और उद्विग्नता से घूमने लगता है।]

प्रतिमा : आप इतने उदास और परेशान क्यों हैं ?

देवचन्द : मैं सोचर हा हूँ ।

प्रतिमा : क्या सोच रहे हैं आप ?

देवचन्द : आज रवि ने मुझे एक बड़ी मुश्किल में डाल दिया है ।

प्रतिमा : वैद्यजी ने ?

देवचन्द : हाँ, वैद्यजी ने !

प्रतिमा : बात क्या हुई ?

देवचन्द : आज मैंने उसे हार वापस करने को कहा तो वह टाल गया ।

प्रतिमा : दे देंगे, कहीं ले तो जायँगे नहीं । और चार दिन पहन लेने दीजिए भाभी को । अभी चार ही महीने तो हुए हैं शादी हुए । माँगने शरमाते होंगे ।

देवचन्द : (रुककर) तुम चार दिन कहती हो, मैं चार महीने भी पहनने की आज्ञा दे सकता हूँ, यदि गहने मेरे हों, लेकिन वे तो धरोहर हैं और फिर वह उन्हें वापस ही कब देना चाहता है ? एक रानी-हार पर ही उसका दिल बेईमान हो गया ! और तुर्रा यह कि मुझे भी अमानत में ख्यानत करने की सलाह देता है । कहता है सब कुछ चुपचाप दबा जाओ !

प्रतिमा : अमानत में ख्यानत कैसी ? वह सब कुछ तो आप ही का है ।

देवचन्द : (चीखकर) प्रतिमा !

प्रतिमा : चीखिए नहीं ! मेरी ज़बान से कोई नयी बात नहीं निकली और न आपके कानों ने......

देवचन्द : तुम्हें शर्म नहीं आती ? यदि वे गहने मेरे होते तो मैं तुम्हें न देता । तुम्हें याद होगा, तुम बलदेव की शादी पर जा रही थीं, तुम ने इशारा भी किया था । केवल एक लाकेट मांगा था, पर मैंने तुम्हें एक तीली तक को हाथ न लगाने दिया ।

प्रतिमा : हां, मैं आपकी कौन होती हूं, लेकिन याद है जब वैद्यजी ने मांगा था तो सब से भारी गहना उठाकर दे दिया था ।

देवचन्द : लिली की मां से पूछे बिना मैंने हाथ तक नहीं लगाया ।

प्रतिमा : तो क्या उस समय न पूछ सकते थे ?

देवचन्द : मैं किसी के विश्वास का अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहता ।

(फिर घूमने लगता है ।)

प्रतिमा : ये बहाने रहने दीजिए ।

(आकर कुर्सी में धंस जाती है ।)

देवचन्द : (मुड़कर चीखते हुए) मैं बहाने बनाता हूं ? (फिर स्वर धीमा करके) कई बार आदमी अपने मित्रों से अपने लिए कुछ नहीं कह सकता, यद्यपि दूसरों की सिफ़ारिश करना उसके लिए सुगम होता है ।

(प्रतिमा चुप रहती है ।)

— : और इसीलिए मैंने इनमें से किसी गहने को हाथ नहीं लगाया । तुम्हारे हाथों में एक चूड़ी नहीं रही, तुम्हारे

कानों में एक फूल तक नहीं रहा, मैंने वह सब सह लिया, लेकिन मुझे यह स्वीकार नहीं हुआ कि किसी मेले, तमाशे, या त्योहार पर तुम इन अमानत के गहनों में से एक छोटी तीली तक भी पहनो। तुम दयानतदारी का मतलब ही नहीं समझतीं, तुम धर्म.........

प्रतिमा : (उठकर) धर्म की दुहाई न दीजिए, मैं इस धर्मात्मापन को जानती हूँ। एक स्त्री अपने पचास-साठ हजार के गहने एक दूसरे पुरुष के हवाले कर देती है, उसके लिए जान तक कुर्बान कर देने को तैयार रहती है और वह उसकी रिश्तेदार नहीं, नातेदार नहीं, कुटुम्ब कबीले में से नहीं...........

देवचन्द : (चौंकता है।) तुम क्या कहना चाहती हो ?

प्रतिमा : मैं जो कहना चाहती हूँ, आप भली-भाँति जानते हैं।

देवचन्द : यही न कि मैं बदमाश हूँ, पापी हूँ, दुराचारी हूँ। लिली की माँ से......प्रतिमा तुम बड़े तीखे घाव लगा रही हो। (**भर्राई हुई आवाज से**) मेरा दिल तो पहले ही रवि की बातों ने घायल कर दिया है।

प्रतिमा : (**नर्म होकर**) हो सकता है, आप पापी न हों ! यह भी हो सकता है कि आप के दिल में कोई बुरा ख्याल न हो ! पर मैं यह कभी नहीं मान सकती कि उसके दिल में भी कुछ नहीं। कोई नारी मन में किसी तरह का पाप रखे बिना, किसी दूसरे पुरुष को इस तरह अपना सब कुछ सौंप सकती है, मैं इस बात को स्वीकार नहीं कर सकती (**देवचन्द चुपचाप घूमता है।**) और फिर वह पुरुष ही किसी सुकोमल भावना के बिना

कैसे इतनी भारी ज़िम्मेदारी अपने कंधों पर ले सकता है ? धोखा हो सकता है, चोरी हो सकती है, चीज़ इधर से उधर हो सकती है (भेद भरे स्वर में) और अब तो मुझे और भी सन्देह है कि यह सब कुछ एक दिन होकर रहेगा। (फिर ऊँची आवाज़ में) हमारी बिसात ही क्या है ? हम उमर भर भी कमाते रहें तो इनमें से एक चीज़ की कीमत न चुका सकेंगे और आप क्या यह सब जानते नहीं। बताइए मैं इसे क्या समझूं ?

देवचन्द : (घूमना छोड़कर) मैं सब गहने वापस कर दूंगा।

प्रतिमा : आप.........

देवचन्द : मैं आज ही सब कुछ वापस कर दूंगा। (असीम पीड़ा से) तुम ने मुझे कभी नहीं समझा, प्रतिमा ! तुम सदा मुझ पर झूठे अभियोग लगाती रही हो, अनकहनी बातें कहती रही हो ! तुम ने कभी इस बात को समझने की कोशिश नहीं की कि तुम्हारे सिवा किसी को मैं ने ज़रा सी भी जगह अपने दिल में नहीं दी। इतनी लड़कियां मेरे यहां पढ़ती हैं। दिन-प्रति-दिन मेरे स्कूल की ख्याति बढ़ रही है। क्या तुम सोचती हो कि तनिक-सी मैली आंख भी इन लड़कियों की नज़रों से बची रह सकती है ? किन्तु भटके हुए पक्षी सा तुम्हारा सन्देह कभी इस डाल पर और कभी उस डाल पर बैठा करता है।

प्रतिमा : (पिघलकर) मैं ने कभी अभियोग नहीं लगाया, मैं सदा आप के हित की बात करती हूँ और आपने कई बार इस बात को स्वीकार भी किया है कि मेरी बातों से

आपको लाभ हुआ है। आप ही सोचिए अब तो मैं घर पर रहती हूँ, खूब चौकसी रखती हूँ। कल-कलां कुछ दिनों के लिए पीहर चली जाऊँ और फिर पीछे कोई चीज इधर उधर हो जाये तो क्या होगा ? आप लाख सच्चे हों, लाख दयानतदार हों, पर कोई आप की बात न मानेगा। जो बातें आपके सपने में भी नहीं आईं, वे ही आपको सुननी पड़ेंगी।

(देवचन्द बेचैनी से घूमता है।)

प्रतिमा : और फिर जिस आदमी का मन एक रानी हार पर इतना बेईमान हो सकता है, उससे और किस बात की आशा की जा सकती है ?

देवचन्द : मैं आज ही सब गहने वापस कर दूंगा। अपनी विपत्ति के समय अपने शराबी पति के डर से, उसने सब आभूषण मेरे पास अमानत रख दिये थे। 'लिली कल बड़ी हो जायगी तो मैं उसकी शादी कैसे करूँगी ?' उसने कहा था, 'उस समय तक तो एक तोली भी न बचेगी।' और उसकी विनय और विपत्ति को देखकर मैंने यह बोझ अपने कंधों पर लेना स्वीकार कर लिया था। मैं आज ही सब कुछ वापस कर दूंगा। (**और भी ऊँची और भारी आवाज में**) मेरी ओर से कोई सारे के सारे गहने उड़ाकर ले जाय, उसका शराबी पति उन्हें एक रात के जुए में गँवा दे, रंडियों को खिला दे, शराब में उड़ा दे, (**धीमे और भरे हुए स्वर में**) मेरी ओर से लिली का ब्याह न हो, वह निर्दोष, भोली-भाली लड़की अयोग्य भिखमंगे के हाथ पड़ जाय—मेरी बला से—मुझे क्या ? मैं आज ही उसके सब गहने वापस कर दूंगा।

(एक दो बार कमरे में चक्कर लगाता है ।)

देवचन्द : तुम मेरी मदद करना, प्रतिमा !

प्रतिमा : मैं मदद करूं ?

देवचन्द : देखो जब तक मैं वह रानीहार उन गहनों में न रख दूं, मैं वह गहने वापस नहीं कर सकता । तुम रानीहार लेने में मेरी मदद करो । मांगे से वह न मिलेगा और मैं नहीं चाहता कि भाभी को इसका पता लगे......

प्रतिमा : (ठहाका मारकर हंस पड़ती है ।) मैं कहती हूँ, इतने अभिनय की क्या ज़रूरत है ? आपने मुझे क्या बिल्कुल ही बच्ची समझ लिया है ? क्या मैं कुछ नहीं समझ सकती ? इतनी चिकनी चुपड़ी बातें, यह ऐक्टिंग ––सिर्फ इसी लिए न कि मैं रानी-हार लेने में मदद दूं और आप निश्चिन्त हो जायें और गहने ज्यों के त्यों...

देवचन्द : (भरे हुए गले से) प्रतिमा ।

(प्रतिमा चुप रहती है ।)

–– : अब मैं तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊं ? मैं कसम खाता हूं कि मैं सब गहने आज ही वापस कर दूंगा । तुम चाहो तो लिली की मां से कभी बात तक न करूंगा । चाहो तो लिली का नाम रजिस्टर से ख़ारिज कर दूंगा । तुम एक बार यह रानी-हार लेने में मेरी मदद करो । मैं चाहता हूं कि जिस तरह मैंने उसकी अमानत ली है, उसी तरह उसे वापस कर दूं । मैं तुम्हारी मिन्नत करता हूं, प्रतिमा !

प्रतिमा : अच्छा अब उठो, नहाओ, खाना खाओ, कपड़े पहनो और स्कूल जाओ ! आज तीज का त्योहार है । हम दर्बार साहिब जाना चाहती हैं । मैं इस सम्बन्ध में सोचूंगी । अब उठो । देखो भाभी तैयार हो चुकी हैं ।

देवचन्द : ठीक ! (**प्रसन्नता से हाथ पर हाथ मारकर**) मुझे तरकीब सूझ गयी है। सुनो यदि भाभी जाने को तैयार हुई हैं तो उन्होंने जरूर ही सब गहने पहने होंगे। जब वे सब ट्रंक आदि बन्द कर चुकें तो तुम बहाने से उन्हें इधर ले आना और फिर अचानक उनसे कहना 'यह रानी-हार तुम ने क्या पहन लिया, इतना कीमती हार ....वहाँ बड़ी भीड़ होती है, इसको उतार जाओ, न जाने कोई खींचकर ही ले जाय ! फिर हाथ मलती रह जाओगी।'

प्रतिमा : अच्छा, मैं यह भी करके देख लेती हूँ। अब आप उठें.....

नौकरानी : (**बाहर से**) मास्टर जी, चाबियाँ दीजिए, स्कूल......

देवचन्द : (**प्रतिमा से**) तुम मेरी चिन्ता न करो प्रतिमा, जैसे मैं कहता हूँ, वैसे ही करो। मैं आज ही लिली की माँ को उसकी अमानत लौटा दूंगा। (**नौकरानी से**) देखो माई, तुम जल्दी जाओ, लिली की माँ को बुला लाओ ! कहना ज़रूरी काम है, बिल्कुल न रुकें, जल्दी चली आयें !

(**नौकरानी जाने लगती है।**)

— : ठहरो !

(**रुपया निकाल कर फेंकता है।**)

— : यह रुपया ले जाओ, तांगे में जाना और तांगे में उन्हें लाना

नौकरानी : जी, उनका घर कोई बहुत दूर तो नहीं, तांगे की क्या जरूरत है ? पैदल......

देवचन्द : मैं जो कहता हूँ तांगे में जाओ ! (**नौकरानी के जाने पर, धीमे स्वर में प्रतिमा से**) देखो मेरे नहाने-खाने की चिन्ता न करो और यदि स्कूल भी जरा देर से खुल गया तो

आफ़त न आ जायगी, लेकिन ये सब गहने मैं अभी, इसी वक्त लौटा देना चाहता हूँ। देखो प्रतिमा! भगवान के लिए मेरी मदद करो! भाभी तैयार हो गई होंगी। मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूँ, वे सब आभूषण पहने बिना न जायेंगी। और रानी-हार तो उन्हें सब से अधिक पसन्द है। जाओ, जल्दी तैयार होकर उन्हें ले आओ और जैसे मैंने कहा है वैसे करो। चलो साड़ी बदलो....

प्रतिमा : आप का ध्यान किधर है आज? अभी तो साड़ी बदली है।

देवचन्द : लेकिन यह........

प्रतिमा : मैं कोई नयी नवेली बहू नहीं। बस इन्हीं कपड़ों से चली जाऊंगी।

देवचन्द : तो चलो!

(दोनों जाते हैं, पर देवचन्द फिर मुड़ आता है।)

— : (अपने आप) अलमारी को ताला लगा है, कम से कम उसे तो खोल जाऊं, ताकि ताला ढूंढने के लिए उन्हें दूर न जाना पड़े।

[जल्दी जल्दी जेब से चाबी निकालकर ताला खोलता है। और फिर चाबी ताले में ही छोड़कर बाहर चला जाता है।

कुछ क्षण खामोशी—जिसमें परे कुर्सी पर बैठे हुए अचल व्यक्ति के मुंह से सिगरेट के धुएं के दायरे खिड़की की ओर जाते हुए दिखाई देते हैं।

फिर प्रतिमा भाभी को साथ लिये हुए आती है। भाभी एक सीधी साधी, मोटी गुलगोथनी लड़की है।

मुखाकृति प्रसन्न, किन्तु भावना-शून्य, भड़कीले वस्त्रों में आवृत हैं। गहनों-कपड़ों की मुहब्बत उसके चेहरे पर लिखी हुई दिखाई देती है।]

प्रतिमा : बस मैं जरा बालों में कंघी कर लूं—बिखर गये हैं।

(कुर्सी में बैठकर बालों में कंघी करती है।)

— : और तनिक ये चीजें करीने से रख जाऊं, वैद्यजी मालूम होता है, इधर उधर कर गये हैं, (हँसती है।) उनकी आदत कभी न सुधरेगी। (शीशा, कंघी और क्रीम आदि करीने से अंगीठी पर रखती है।) नहीं, मास्टर जी योंही शोर मचा देंगे। उन्हें तो जरा-सी अव्यवस्था भी बुरी लगती है (कुर्सियों पर बिखरे हुए कपड़े व्यवस्था के साथ खूंटियों पर टांग कर) तो पांवों में क्या पहनकर चलूं ? (कपड़ोंवाली अल्मारी के निचले खाने से एक दो जूतों के जोड़े निकालती है।) गुरगाबी पहन जाऊं ? (उसे उठाकर देखती है। फिर उसे अल्मारी में रख देती है।) ना बाबा, वहां तो नंगे पांव चलना पड़ेगा, कोई ... (और फिर जैसे उसने पहली बार ही अचानक देखा हो।) अरे तुमने तो सब गहने पहन लिये ? ना बहिन, कम से कम यह रानी-हार तो रख जाओ, इतनी भीड़ होती है वहां, कोई बदमाश...........

भाभी : तुम ने मुझे पहले क्यों न बता दिया ? अब इतने ट्रंक कौन उठाये ?

प्रतिमा : ट्रंक में रखने की क्या जरूरत है ? इस अल्मारी में रख जाओ, ताला लगाकर चाबी साथ ले जाओ। घंटे-आध घंटे में तो हम वापस आ जायेंगे। मैं तो तुम्हारे ही

हित की बात कर रही हूँ, कोई खींचकर ले गया तो हाथ मलती रह जाओगी।

देवचन्द : (बाहर से) जल्दी करो, फिर वहाँ इतनी भीड़ हो जायगी कि जाना भी कठिन हो जायगा।

भाभी : (हार उतारकर प्रतिमा को देते हुए) लो करो बन्द इसे अलमारी में।

प्रतिमा : (हार लेकर अल्मारी में बन्द करते हुए) और मेरी मानो तो कर्ण-फूल भी इसी में रख जाओ, भीड़ में इनके साथ कान भी खिच जाते हैं।

भाभी : ऐसा भी क्या अंधेर है, कर्ण-फूल तो मैं नहीं उतार सकती। मुझे बुच्चा बुच्चा रहना पसन्द नहीं।

प्रतिमा : इसे ताला कौन-सा लगायें (ज़रा इधर उधर देखकर) वह ताला ज़रा देना भाभी !

[भाभी ताला देती है। प्रतिमा लगा देती है और चाबी जेब में रखती है। दोनों जाती हैं। देव चन्द धीरे-धीरे अन्दर प्रवेश करता है। प्रतिमा वापस आती है।]

प्रतिमा : (धीमे स्वर में) रानीहार इस अल्मारी में बन्द है। यह लो चाबी।

देवचन्द : चाबी की ज़रूरत नहीं, तुम भाग जाओ।

[प्रतिमा चली जाती है। देव चन्द कुछ क्षण तक खिड़की में जाकर बाहर की ओर देखता है। फिर वापस आता है, दरवाज़ा लगा देता है और फिर इधर उधर कुछ ढूंढ़ता है।]

— : (अपने आप) आज मुझे अपने ही घर में चोर बनना पड़ेगा।

(अन्दर कोठड़ी में जाकर हथौड़ी लाता है।)

— : (हथौड़ी को हाथ में उछालता हुआ) तुलसीदास ने

कहा है, "धीरज-धर्म मित्र और नारी—आपद काल परखिए चारी।"

[हथौड़ी से ताले को तोड़ कर माला बाहर निकालता है और उसे हाथों में उछालता है।]

— : किन्तु दूसरा चरण बदल देना चाहिए। आजकल तो यों होना चाहिए : "गरज पड़े तो परखिए चारी।"

[हँसता है और हथौड़ी को फिर अन्दर कमरे में फेंक देता है। बाहर दस्तक की आवाज़ आती है। बढ़कर कुंडी खोलता है।]

— : आइए, आइए।

(माई के साथ लिली की मां प्रवेश करती है।)

— : (जेब से चाबी निकालकर माई को देते हुए) माई, जाकर स्कूल खुलवाओ। अध्यापिकाओं से कहना कि मैं आज दोपहर तक न आ सकूंगा।

(माई चली जाती है।)

— : (लिली की मां से) बैठिए!

लिली की माँ : (बैठते हुए) मैं तो डर ही गयी थी। क्या बात है आपने इतनी जल्दी बुला भेजा।

[देवचन्द अन्दर कोठड़ी में जाता है और कुछ क्षण बाद एक डिब्बा उठाकर लाता है और उसे लिली मां के सामने रख देता है और उस पर माला टिका देता है।]

लिली की माँ : (हैरानी से) यह क्या?

देवचन्द : आप की अनामत!

लिली की माँ : (और भी हैरान) लेकिन............

देवचन्द : आप इसे ले जायें।

लिली की माँ : लेकिन आप ने वादा किया था कि आप लिली की शादी तक इन्हें अपने पास रखेंगे।

देवचन्द : पर अब यह मुश्किल है।

(लिली की मां चुप सोचती है।)

— : मैं प्रतिमा के तानों से तंग आगया हूँ।

लिली की माँ : प्रतिमा तो पहले भी ताने देती थी।

देवचन्द : मुझे इनके चोरी हो जाने का डर है। आप जिस तरह मुझे यह अमानत सौंप गई थीं, उसी तरह ले जाइए।

लिली की माँ : चोरी तो मेरे यहां भी हो सकती है। कोई बाहर से न आये तो घर वाला ही डाका डाल सकता है।

देवचन्द : तुम नहीं समझीं लिली की मां, मुझे बाहर के चोर का भय नहीं, अन्दर के चोर का डर है।

लिली की माँ : यदि आप के चोरी हो जायगी तो मैं समझूंगी मेरे चोरी हो गयी है।

देवचंद : तुम बिल्कुल नहीं समझीं लिली की मां। मुझे मन के चोर का डर है। मुझे स्वयं अपने आप से भय है। आज तक मुझे अपने आप पर पूरा विश्वास था, पर आज रवि की बातों ने उस विश्वास को डिगा दिया है। तुम्हारे आभूषण दबाये भी जा सकते हैं, यह मैंने कभी न सोचा था, किन्तु अब इस क्षण के बाद मैं कह नही सकता। मुझे मन का भरोसा नहीं।

[**डिब्बा और रानीहार उठाकर उसकी झोली में रख देता है। सहसा कुर्सी पर अचल बैठा रहने वाला व्यक्ति उछल कर उठता है।**]

अचल बैठा रहने वाला व्यक्ति : बकवास !

(कमरे के मध्य आ जाता है ।)

— : बन्द करो । क्या इसी की प्रशंसा के पुल तुम बांध रहे थे ? मैं अब तक बड़ी कठिनाई से अपने आप को रोके बैठा रहा, पर अब यह सब बकवास बन्द करो ! (असीम उपेक्षा से) सस्ती भावुकता, पुरानी, गली-सड़ी थीम, और दक़ियानूसी ट्रीटमेंट । इसमें यथार्थता कहां है ? आज का युग यथार्थता का युग है और आज इसी के दृष्टि-कोण से जीवन को देखा जाता है । क्यों गजेन्द्र, क्या इसी की प्रशंसा तुम करते थे ?

[सिगार का बड़ा-सा कश लेकर धुआं छोड़ता है जो चक्कर खाता हुआ छत की ओर बढ़ता है ।]

देवचंद : (गजेन्द्र) पर यह तो सोलहो आने वास्तविक है । एक बिल्कुल सच्ची घटना से इस नाटक का कथानक लिया गया है ।

अचल बैठा रहने वाला व्यक्ति : तुम इसे यथार्थता कहते हो । कौन आज के ज़माने में साठ हज़ार की चीज़ वापस कर देगा ?

गजेन्द्र : पर मनोराम ही वह आदमी है ।

अचल बैठा रहने वाला व्यक्ति : (चौंककर) मनोराम मूर्ख है और आज का यथार्थवादी ऐसे मूर्खों का चरित्र-चित्रण नहीं करता। वह अपवादों को छोड़कर आम आदमियों की बात करता है । वह आदर्श के पीछे नहीं भागता, यथार्थ के पीछे दौड़ता है । वह सौंदर्य को नहीं, वीभत्स को चित्रित करता है । वह यथार्थवादी है—घोर यथार्थवादी ! यह नाटक नहीं चलेगा । कोई और चुनो और देखो इस बार मसौदा मुझे दिखा लेना ।

(खट खट पांव रखता हुआ चला जाता है ।)

गजेन्द्र : (चकित और किं-कर्तव्य-विमूढ़) यथार्थ......पर मैं कहता हूं, यह एक दम यथार्थ है। सोलहों आने सच है। (लिली की मां की ओर देखता हुआ) तुम तो जानती हो मनीराम की बात....

(पर्दा सहसा गिर पड़ता है।)

वेश्या

पात्र

जवाहर

मोती

गुलशन

निरंजन

स्थान

जवाहर का सजा हुआ कमरा

[सामने लम्बे कोच के एक कोने में जवाहर बेपरवाही से कुछ खोई हुई सी बैठी है—अधेड़ उमर की वेश्या, जो अपने रूप और लावण्य को बड़े यत्न-पूर्वक सुरक्षित रखे हुए है। आकृति पर क्रोध, दुःख और चिन्ता झलक रही है। बायां हाथ कोच पर है, दायां नीचे लटक गया है। सिर पीछे दीवार के साथ लग चुका है और टांगें गालीचे पर फैली हुई हैं।

पर्दा धीरे धीरे उठता है। जवाहर कुछ क्षण तक उसी तरह निश्चेष्ट पड़ी रहती है, फिर सचेत होती है जैसे, इतनी देर सोचने के बाद मन में किसी निर्णय पर पहुंच गई हो।]

जवाहर : (जैसे अपने से) हां ऐसा ही होगा। मेरे अपमान का, मेरे प्रेम के अपमान का बदला ऐसा ही भयानक होगा, जब मैं तुम्हें पैसे-पैसे को मोहताज, दर दर की ठोकरें खाते देखूंगी तो निरंजन (मुख क्रोध से लाल हो जाता है।) मेरे प्रतिशोध की ज्वाला शान्त हो जायगी।

(उठकर उद्विग्नता से घूमती है।)

— : मैं अपने हृदय को (रुकती है।) नारी के अपने इस

सहज-सुकोमल हृदय को—जो ठुकराये जाने पर भी प्यार करता है, दूसरे की निठुरता को देखकर भी मोह नहीं छोड़ता, गाली का भी स्नेह से उत्तर देता है—इस हृदय को वक्ष से निकाल फेंकूंगी और इसके स्थान पर, निरादर का बदला लेनेवाले, अपमान का उत्तर देने वाले, कठोर, क्रूर, निर्मम हृदय को अपने पहलू में ला रखूंगी।

[**किसी के आने की आहट होती है। जवाहर अन्यमनस्क सी उधर देखती है, बायें दरवाजे से मोती प्रवेश करती है।**]

मोती : मां !

[**जवाहर उसके पास जाती है, प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरती है। बलाएं लेती है और फिर उसके साथ आकर कोच पर बैठ जाती है।**]

मोती : मां !

जवाहर : (**ग़ालीचे की ओर देखते हुए**) मोती !

मोती : तुम ने मुझे बुलाया था, मां ?

जवाहर : (**उसी तरह देखते हुए**) यदि कोई मेरा अपमान करे....

मोती : तुम्हारा अपमान—कौन कर सकता है तुम्हारा अपमान !

(**मुख लाल हो जाता है।**)

जवाहर : यदि कोई मेरा अपमान करे और तुम में उससे बदला लेने की शक्ति हो तो कहो, क्या तुम अपनी मां के अपमान का बदला न लोगी ?

मोती : क्यों न लूंगी ? मुझे बताओ किसने तुम्हारा अपमान किया है और मैं क्या कर सकती हूं ?

जवाहर : मोती, सोच लो, चाहे वह कोई हो, तुम्हें उससे बदला लेना होगा। जैसे मैं कहती हूं, उसी तरह बदला लेना होगा! तभी मेरी आत्मा को ठंडक मिलेगी, तभी मेरे हृदय में प्रतिक्षण धू-धू करके जलनेवाली ज्वाला शान्त होगी!

मोती : तुम कहो मां, वह कोई भी क्यों न हो—मैं उससे बदला लूंगी।

जवाहर : चाहे वह निरंजन हो!

मोती : निरंजन!

जवाहर : हां, निरंजन!

मोती : (तनिक आवेग से) तो मैं उससे भी बदला लूंगी! यदि उसने तुम्हारा अपमान किया है तो मेरा प्रतिशोध उससे भी बदला लेगा!

जवाहर : भगवान तुम्हारी खूबसूरती अमर करे मोती! तुमने मेरी आत्मा की जलन मिटा दी। कहो मोती, एक बार फिर प्रतिज्ञा करो, तुम अपनी मां के अपमान का बदला लोगी! उस निरंजन से, उस सुन्दर, सम्पन्न जल्लाद से, जिसने तुम्हारी मां को हेय समझा; उसका निरादर किया; उसकी अवहेलना की; उसकी इतनी भी परवाह न की, जितनी एक क्षुद्र तिनके की की जाती है।

मोती : (जैसे अपने से) अवहेलना की!

जवाहर : हां, जिसने इस जवाहर को अवहेलना के पैरों से ठुकरा दिया—इस जवाहर को जो मोती की मां है। उस अप्सरा सी मोती की मां, जिसके संकेत-मात्र से घर के घर तहस-नहस हो सकते हैं; जिसकी भृकुटी पर बल पड़ते ही बड़े बड़े मानी सिर झुका देते हैं; जिसके फूल

ऐसे गाल पर एक आंसू का बहना, एक दुनिया में हल-चल मचा सकता है।

मोती : **(उसी तरह जैसे अपने से)** मोती की मां का अपमान, मैं अवश्य बदला लूंगी। मैं कोशिश करूंगी।

जवाहर : कोशिश नहीं मोती, कोशिश नहीं, तुम कहो—मैं निश्चय ही बदला लूंगी ! आखिर तुम्हारे पास क्या नहीं ? तुम्हारी आंखों में जादू नहीं क्या ? तुम्हारी मुस्कान में बिजली नहीं क्या ? तुम्हारे रूप में आकर्षण नहीं क्या ? सब कुछ है, सब कुछ है, दाना भी है, दाम भी है। अपने अनुपम लावण्य का दाना बखेरो, फिर अपनी मीठी मादक बातों के जाल में उसे जकड़ लो और फिर.........

मोती : **(उसी तरह अपने ध्यान में मग्न)** और फिर—?

जवाहर : जब पक्षी जाल में फंस जाय तो उसके पंख नोचकर उसे छोड़ दो—पंख नोचकर—हां, समझीं मोती—पंख नोचकर ! पंख न होंगे तो उड़ान न रहेगी, उड़ान न रहेगी तो अहंकार न रहेगा और अहंकार न रहेगा तो उसका वह उन्नत-मस्तक सदा के लिए नत हो जायगा।

मोती : **(उसी तरह अपने ध्यान में मग्न)** हां उसका मस्तक नत हो जायगा।

जवाहर : यह धन-दौलत का दर्प ही तो है, जिससे उसका सिर उठा रहता है। दिमाग आसमान पर रहता है। विपन्न की सुन्दरता कैसी ? दौलत के पंख झकझोर दो, उसकी सुन्दरता मिट्टी में मिल जायगी। आज निरंजन दर्प से सिर उठाकर चलता है, कल उसकी आंखें धरती में गड़ी होंगी।

मोती : (उसी स्वर में) मैं उसकी दौलत के पर काट लूंगी।

जवाहर : फिर उसे धत्ता बता देना। उसे अपने घर से धक्के देकर निकलवा देना। मैं उसे बे-सरो-सामानी की हालत में गलियों की ख़ाक छानते देखूंगी तो मोती, मेरे हृदय की धधकती हुई ज्वाला शान्त हो जायगी। (**बेखुदी में जैसे अपने आप**) उसने मेरी परवाह न की, मेरी ज़रा भी परवाह न की, मुझे ठुकरा दिया।

मोती : ठुकरा दिया !

(बाहर दस्तक की आवाज़ सुनाई देती है।)

जवाहर : हां, ठुकरा दिया और मोती तुम्हें इसका बदला लेना होगा। आज कल वह तुम पर बुरी तरह फ़िदा है, तुम्हारे इंगत पर अपनी जान कुर्बान करने को तैयार रहता है। तो क्या इस पर भी, उसे अपने अधिकार में पाकर भी तुम बदला न लोगी ?

मोती : तुम कैसा बदला चाहती हो मां ?

जवाहर : बस इसके पंख नोच दो मोती; उसकी दौलत छीन लो; उसे दर-दर का मोहताज बना दो ! उसे अपनी दौलत का, अपनी ख़ूबसूरती का जो दर्प है, वह न रहे।

[दस्तक फिर होती है। मोती जाती है। जवाहर कौच में धंस जाती है।]

— : (**जैसे अपने आप से**) मुझे तुम से प्रेम था निरंजन—हां, प्रेम था—वेश्या का प्रेम दौलत से होता है, वह धन-वैभव से प्रेम करती है, लेकिन मैंने तुमसे एक वेश्या का प्रेम न किया था। मैंने तुम्हें एक वेश्या का दिल न दिया था। मैंने तुम्हें जो दिल दिया था, वह केवल एक नारी का दिल था—छल कपट से रहित नारी का दिल ! पर

तुम ने उसकी कद्र न की, तुम ने उसे ठुकरा दिया। तुम्हें अपनी दौलत का, अपनी सुन्दरता का दर्प है, इसीलिए न ? पर देखना, इसी जवाहर की लड़की एक दिन तुम्हारा यह दर्प मिट्टी में मिला देगी; तुम्हारी दौलत छीन लेगी, तुम्हारी खूबसूरती छीन लेगी और फिर एक दिन तुम्हें इसी जवाहर के कदमों में लोटना होगा।

(जल्दी जल्दी मोती का प्रवेश)

मोती : मां, निरंजन आये हैं।

जवाहर : तो तैयार हो जाओ ! अपनी संगिनी शराब को भी साथ ले लो ! मैं नीचे सब सामान तैयार रखूंगी—कागज भी वकील भी और गवाह भी। आज उसे अपनी सारी जायदाद अपने नाम पर लिखने के लिए विवश कर दो। पहले उसे शराब पिलाओ—इतनी शराब कि वह होश खो बैठे और फिर सचेत होकर जब आये तो इस तरह अकड़कर नहीं, बल्कि तुम्हारे दर का, मेरे दर का भिखारी होकर !

मोती : तुम जाओ, उन्हें लाकर यहां बैठाओ, मैं भी कुछ क्षण बाद आ जाऊंगी।

(जवाहर जाती है)

— : (जैसे अपने से) मां कहती है, तुम्हारे पास क्या नहीं ? हाय मां, तुम्हें क्या बताऊं ? मेरे पास सब कुछ है ! सुन्दरता, लावण्य, आकर्षण—सब कुछ है ! नहीं, तो एक ही चीज नहीं। एक ही चीज नहीं मां, मेरा दिल ही मेरे पास नहीं ! मेरा दिल ही मेरे काबू में नहीं !

(बैठ जाती है।)

— : मां कहती है—निरंजन ने मेरा अपमान किया है, पर·

क्या अपमान किया है, यह नहीं बताया। (सोचती है, दीर्घ-निश्वास छोड़ती है।) कुछ नहीं, कुछ नहीं, कोई अपमान नहीं, कोई निरादर नहीं! मां—तुम सिर्फ़ उनकी दौलत चाहती हो। शायद तुम्हें मेरी कमजोरी का पता चल गया है। तभी तो यह बहाने हैं। मां, तुम निरंजन की दौलत चाहती हो, तुम्हें दौलत मिल जायगी। (लम्बी सांस भरकर) हाय क्या वेश्या दौलत के बिना किसी से प्रेम कर ही नहीं सकती? क्या किसी के भोले भाले दिल का उसकी दुकान पर कोई मोल नहीं?

[पैरों की चाप सुनाई देती है, मोती दायीं ओर के दरवाजे का पर्दा उठाकर चली जाती है। बायीं ओर के दरवाजे से जवाहर और निरंजन प्रवेश करते हैं।]

जवाहर : निरंजन प्यारे, तुम बैठो, मोती को मैं अभी जाकर बताती हूं, सुनते ही सिर के बल दौड़ी आयगी। न जाने तुमने उस पर क्या जादू कर दिया है? न जाने तुम सब पर क्या जादू कर देते हो? जब से उसने तुम्हें देखा हैं, अपनी सुध-बुध भुला दी है। न ठीक तरह खाती है, न पहनती है, कुछ उखड़ी उखड़ी सी रहती है, लेकिन इस पर भी वह प्रसन्न है, (दीर्घ-निश्वास छोड़ती है।) निरंजन, तुम जानते हो वह क्यों प्रसन्न है?

[उसे मीठी मदिर दृष्टि से देखती है और चली जाती है। निरंजन ऊंचे कद का गोरा चिट्टा सुन्दर बलिष्ट युवक है। आंखों में बेहद आकर्षण है—ऐसा युवक जिसे जो भी देखे प्रेम करने लगे। जवाहर के चले जाने पर बेपरवाही से कोच पर बैठ जाता है, सिगरेट के एक दो कश लगाता है, धुआं छोड़ता है, फिर दरवाजे की

ओर देखकर उठता है, इधर उधर घूमता है, फिर कश लगाता है और धुआं छोड़ता हुआ दीवार पर टंगे मोती के बड़े चित्र के पास जा खड़ा होता है।]

निरंजन : (चित्र की ओर देखते हुए) मोती, मोती, जादू तुम फूंकती हो, या मैं ? मदमस्त तुम्हारी आंखें हैं, या मेरी ?

मोती : (दायीं ओर के पर्दे को हटाकर प्रवेश करती है।) यह मेरी आंखों से पूछो।

निरंजन : (मुड़कर) मोती !

मोती : निरंजन !

[दोनों निमिष भर के लिए एक दूसरे की ओर देखते हैं, फिर दोनों की निगाहें झुक जाती हैं।]

निरंजन : (लम्बी सांस लेता है।)

मोती : (लम्बी सांस लेती है।)

(दोनों कौच पर बैठ जाते है।)

निरंजन : अभी तुम्हारी मां कह रही थी, तुमने मोती पर जादू कर दिया है। वह खाने पहनने की ओर से बेपरवाह हो गयी है, मोती मेरी ओर देखकर सच कहना—मेरी आंखों ने तुम पर जादू किया है या तुम्हारी आंखों ने मुझ पर ? बेपरवाह मैं रहता हूं या तुम ?

मोती : तुम कब बेपरवाह नहीं थे, तुम्हारा यह अन्दाज़ क्या कम दिल में घर करता है ? लेकिन मेरी बेपरवाही नयी है। इनमें वह जादू कहां जो इन आंखों में है ? काश वह इन आंखों में भी होता तो मैं तुम्हें अपने बस में कर लेती, अपनी आंखों में बैठा लेती, अपने दिल में छिपा लेती।

[नौकरानी शीशे की ट्रे में शराब और दूसरा सामान लाकर रखती है। मोती प्याले में मदिरा ढालती है।]

निरंजन : मोती, तुमने मुझे शराब पीने से रोका था।

मोती : हां रोका था, पर आज मुझे तुम्हारी परीक्षा लेनी है और फिर शायद तुम्हें आज के बाद इस तरह शराब न मिले, इसीलिए पियो निरंजन !

[निरंजन बेपरवाही से सिगरेट को ऐश-ट्रे में फेंकता है, पीता है और गाता है।]

क्यों इन आंखों के पीछे
दुनिया दीवानी होती ?
क्यों होश भुलाते जग का
इन दो सीपों के मोती

क्या छिपा हुआ है प्रेयसि
इन दो पलकों के अन्दर ?
और भरे हुए हैं इनमें
कितने मस्ती के सागर ?

तुम इन अपनी आंखों से
क्या यह सब जान सकोगी ?
मेरी आंखों से देखो
तो कुछ पहचान सकोगी।

[मोती की आंखों की ओर इशारा करता है और फिर गाता है :]

तुम इन अपनी आंखों से
तुम इन अपनी आंखों से

तुम इन अपनी आंखों से
क्या यह सब जान सकोगी
मेरी आंखों से देखो
तो कुछ पहचान सकोगी ।

मोती : (शराब उंडेलते हुए मुस्कराती है ।) और यदि मैं भी यही गाऊँ, मैं भी यही कहूं !

(प्याला बढ़ाती है ।)

निरंजन : (प्याला हटाकर) मोती बस ! नहीं मैं होश खो बैठूंगा ।

मोती : अच्छा है निरंजन, तुम होश खो बैठो ! तुम होश खो बैठो निरंजन ! मुझे आज तुम्हारी परीक्षा लेनी है और शायद अपने होश में तुम उस में पूरे न उतरो और मैं नहीं चाहती कि तुम इसमें असफल रह जाओ !

[निरंजन मोती की ओर देखता है—वहां गम्भीरता है, जोश से उठ खड़ा होता है ।]

निरंजन : तो मोती अभी परीक्षा लो ! मैं असफल न हूँगा । मैं तुम से प्रेम करता हूं और मेरा यह प्रेम एक स्वस्थ धनी, युवक की कोरी वासना नहीं, यह आग दिल में लगी है । तुम समझती हो, तुम कुछ कहोगी और अपने होशोहवास में मैं उसे पूरा न करूंगा—तुम ने मुझे कितना गलत समझा । (और जोश से) कहो तो यह जान दे दूं ! इस से बढ़कर मेरे पास और क्या है ? लाओ विष का प्याला, मैं आंख मूंदकर पी जाऊंगा ।

मोती : (अधीर होकर) निरंजन, बैठ जाओ । मैं तुम्हारे प्रेम में सन्देह नहीं करती, लेकिन मैं चाहती हूं कि तुम वह सब कुछ कर सको, ओह ! तुम नहीं जानते मैं स्वयं

यह सब कुछ नहीं चाहती, पर यह जरूरी है। यदि तुम न कर सके..........

निरंजन : मोती, कहो। भूमिका न बांधो, जो कुछ कहना है, जल्द कह डालो।

मोती : (खड़ी हो जाती है।) मां, मेरी कीमत मांगती है।

निरंजन : कीमत...कीमत कैसी ? मैं तुम्हारा शरीर नहीं चाहता। मैं केवल तुम्हारा दिल चाहता हूँ। मैं सिर्फ़ तुम्हारा प्रेम चाहता हूँ। केवल यह चाहता हूँ कि तुम मुझे भी याद रखो ! तुम चाहे जो करो, चाहे जिससे प्यार करो, पर मेरे लिए भी अपने दिल के किसी कोने में थोड़ी सी जगह रखो ! मुझे भी न भुलाओ !

मोती : (उसी अधीरता से) निरंजन बैठ जाओ !

निरंजन : हां मोती, मेरा प्यार स्वार्थी नहीं ! वह पवित्र है। वह केवल तुम्हारे दिल में—दिल के किसी कोने में, थोड़ी सी जगह चाहता है। इस से अधिक दे दो तो तुम्हारी कृपा है, पर जितना वह चाहता है, उसकी कीमत कैसी ? सौदा कैसा ?—क्या प्यार खरीदा भी जा सकता है ?

मोती : निरंजन, मैं ऐसा नहीं चाहती। मैं तो इस घृणित-व्यवसाय से, सुन्दरता के इस व्यापार से नफ़रत करती हूँ; मैं इसे ज़रा भी पसन्द नहीं करती। मैं तो तन से, मन से, प्राण से तुम्हारी होना चाहती हूँ। मन मेरा है; वह तुम्हारे चरणों पर न्योछावर है, अपनाओ, चाहे ठुकरा दो ! तन भी तुम्हारी भेंट है। तुम्हें यह भी ले लेना चाहिए। हां, इसकी कीमत देनी पड़ेगी। रहे प्राण ! सो ये प्राण भी तुम्हारे हैं। तुम ले सकते हो।

निरंजन : तो कहो, मैं क्या दूं, तुम्हारी मां क्या चाहती है ?

मोती : निरंजन, बैठ जाओ !

निरंजन : पहले कहो ! ....

मोती : वह तुम्हारी सब जायदाद चाहती है !

[**निरंजन कौच में धंस जाता है। मोती चुपचाप उसकी ओर देखती है ।**]

निरंजन : (**लम्बी सांस लेकर**) तो...तो योंही सही, मुझे स्वीकार है ।

मोती : मुझे स्वीकार नहीं । तुम्हें दुख होता है। तो न सही, मैं इस नरक ही में रह लूंगी और तुम्हें याद कर लिया करूंगी।

(**निरंजन मुस्कराता है ।**)

-- : तुम हँसते हो ।

निरंजन : मुझे हँसी आती है, तुम बिल्कुल ऐसी ही बातें करती हो जैसी दूसरी वेश्याएँ। तुम प्रेम को रुपये से तौलती हो । कौन नहीं जानता, वेश्या सब धन-सम्मान लूट कर राजा को रंक बना देती है । पर तुम ने इतना उलट फेर किया ही क्यों ? यदि तुम साफ़ कह देतीं, मुझे तुम्हारी दौलत चाहिए तो क्या मैं न देता ? वह तो तुम्हारी ही है।

मोती : (**आंखों में आंसू भर आते हैं ।**) मैं तुम्हारी दौलत नहीं चाहती ।

निरंजन : तो ?

मोती : मां चाहती है ।

निरंजन : तो चलो, मैं तुम्हारी मां के नाम सब जायदाद लिख देता हूं । तुम्हें मेरी ओर से छुट्टी है । मैं इसके बदले में तुम से कुछ नहीं मांगता । तुम यदि याद ही रख सको तो काफ़ी है--हां मोती, इतना ही काफ़ी है । तुम

देख लेना, मैं फिर भी तुम्हारी मूर्ति का पुजारी बना रहूँगा ! यद्यपि मैं जानता हूँ, इसके बाद मुझ पर इस घर के दरवाजे बन्द हो जायेंगे, मैं तुम्हारी सूरत तक को तरस जाऊँगा, पर मेरे हृदय में तुम्हारी जो मूरत है, उसकी पूजा से तो मुझे कोई न रोक सकेगा !

मोती : (**सिसकते हुए**) निरंजन जाने दो, इस तरह नहीं होगा ।

निरंजन : तो किस तरह होगा ?

मोती : तुम्हें दौलत मां को देनी होगी । वह उसकी भूखी है, मुहब्बत मुझे देनी होगी, मैं इसकी प्यासी हूँ ।

निरंजन : मोती !

मोती : भगवान साक्षी है !

निरंजन : तो आओ ।

मोती : मैं न जाऊँगी । तुम जाओ, मां के नाम कागज लिख दो और मेरे लिए नीचे बाजार से एक सीधी साधी साड़ी ले आओ । इन गहनों-कपड़ों से पाप की गन्ध आती है । मैं ये सब यहीं छोड़ जाऊँगी ।

निरंजन : बहुत अच्छा ।

(तेजी से निरंजन चला जाता है ।)

मोती : (**दीर्घ-निश्वास छोड़ती है ।**) तुम मुझे कितना ग़लत समझते हो, निरंजन । तुम्हारा संदेह ठीक है, मैं वेश्या हूँ, पर तुम देख लोगे कि मोती सच्ची है और तुम्हारा सन्देह ग़लत है ।

[गुलशन और जवाहर प्रवेश करती हैं, मोती अपने कमरे में खिसक जाती है ।]

गुलशन : एक लाख की जायदाद बाई, मोती ने उसे किस तरह वस में कर रखा है।

जवाहर : (**अपने ध्यान में सामने दीवर की ओर देखते हुए जैसे अपने आप**) में उसकी जायदाद नहीं चाहती।

गुलशन : आपने वकील और अर्जीनवीस बुला रखा था, आपको किस तरह मालूम था कि वह आज ही सब कुछ लिखने को तैयार हो जायगा।

जवाहर : मैंने मोती से कहा था और मैं जानती थी मोती का एक इशारा काफी होगा (**जैसे अपने आप**) मोती, मोती तुम्हारे संकेत-मात्र पर जायदादें न्योछावर कर दी जाती हैं और मेरे प्यार को भी ठुकरा दिया जाता है।

(**कौच पर बैठ जाती है।**)

— : गुलशन कुछ गाओ, कोई ऐसा गीत, जो मन से सब चिन्ताएं दूर कर दे, सारे दुख भुला दे।

गुलशन : (**चकित**) चिन्ताएँ, दुख,

जवाहर : (**बेज़ारी से**) ओह, तुम नहीं जानती, मेरे हृदय में कौनसा तूफ़ान उठ रहा है? कौनसी हलचल मची हुई है? गाओ, तुम गाओ। (**अपने ध्यान में**) निरंजन यह कुर्बानी मेरे लिए नहीं, मोती के लिए कर रहा है! मोती, मोती, तुम्हारा कैसा भाग्य है? मुझे तुमसे ईर्षा होती है (**गुलशन से**) गुलशन गाओ, कुछ गाओ!

(**गुलशन गाती है।**)

आ इस दुनिया के ऊपर, अभिनव संसार बसायें
जिसमें दुख इस दुनिया के, हमको न सताने पायें
ऐसा संसार कि जिसमें दिन, क्षण बन बन कर, बीतें
इस दुनिया के दुःखों को, जिस दुनिया में हम जीतें

उठ आलस छोड़ सजनि अब, दिन योंही बीत चलेगा
हम ही छोड़ें तो छोड़ें, कब दुख हमको छोड़ेगा

जवाहर : (दीर्घ-निश्वास छोड़ती है) चलो गुलशन !

[दोनों धीरे धीरे जाती हैं। कुछ क्षण बाद एक कागज हाथ में लिये निरंजन प्रवेश करता है।]

निरंजन : (शून्य ही में) लो यह कागज है मोती, तुम इसे लेलो और देख लो तुम्हारे प्रेम का भिखारी दौलत को हेय समझता है। मोती तुम व्यापार करती हो, तुम समझती हो मैं दौलत की परवाह करता हूँ ! तुम्हारे बिना दौलत की क्या हस्ती है और तुम साथ हो तो फिर दौलत की क्या परवाह है।

[जल्दी जल्दी कमरे में घूमता है। दायीं ओर के दरवाजे से मोती प्रवेश करती है।]

मोती : तुम आ गये निरंजन।

निरंजन : (चौंक कर) हां यह लो कागज, अपनी मां के पास ले जाओ। इस कागज द्वारा मैंने सारी जायदाद उसके नाम कर दी है। इसकी रजिस्ट्री का प्रबन्ध कर दिया है, वकील यह काम भली-भांति सर-अंजाम दे लेगा।

मोती : (लम्बी सांस लेकर) तुम ने मुझे एक बड़े बोझ के नीचे दबने से बचा लिया (कागज लेती है) और वह साड़ी लाये ? मैं इसी क्षण तुम्हारे साथ चलूंगी।

निरंजन : (मोती की आंखों में आंखें डालकर देखता है) अभी उसकी जरूरत है मोती ?

मोती : उसके बिना यह कागज नहीं चाहिए।

निरंजन : मैं वह नहीं लाया।

मोती : तो क्या तुम चाहते हो कि मैं वही सब कुछ कहूँ जो मां

चाहती है, मैं अपने इस शरीर को, जिसे तुमने प्यार भरी निगाहों से देखा है विषयासक्त कामियों की दया पर छोड़ दूं ! मैं मुस्कराऊँ, क्योंकि उनकी प्रसन्नता इसी में है; नाज़-नखरे करूं, क्योंकि वे यह चाहते हैं ! चाहे मेरा दिल रोता हो, खून के आंसू बहाता हो।

[निरंजन निर्निमेष उसकी ओर देखता है। मोती की आंखों में आंसू भर आते हैं।]

मोती : निरंजन मुझे यह नहीं चाहिए। इस की आवश्यकता मां को है। मुझे तुम्हारी मुहब्बत चाहिए, और यदि वह तुम मुझे नहीं देते तो यह भी ले जाओ, मैं मां का कहा मान लूंगी, तुम्हें तंग न करूंगी।

निरंजन : भगवान जानता है मोती, मैं जायदाद की ज़रा भी परवाह नहीं करता, मैं तो यह चाहता हूं, कि तुम्हें कष्ट न हो। तुम्हारी मां मेरी जायदाद चाहती है, वह ले ले, पर तुम मुझ गरीब के साथ मुसीबत में क्यों पड़ो ?

मोती : तुम मुझे ले जाना नहीं चाहते......

निरंजन : तुम चलोगी ?

मोती : अभी, इसी क्षण !

निरंजन : गरीबी, गुमनामी, मुसीबत का स्वागत करना होगा।

मोती : मैं तैयार हूं।

निरंजन : (तेज़ी से दरवाज़े की ओर जाता हुआ) तो मैं अभी आया।

मोती : (आवाज़ देती है) गुलशन गुलशन !

(कमरे में घूमती है, कुछ क्षण बाद गुलशन आती है।)

-- : मां को बुलाओ !

(गुलशन जाती है।)

मोती : (अपने आप) मां तुम निरंजन की दौलत चाहती थीं। लो मैं तुम्हें देती हूँ—अब वह कंगाल है, गरीब है, भिखारी है। तुम्हारी इच्छा पूरी हो। हां मैं उसे अपने दरवाजे से धतकार न सकूंगी, लेकिन वह यहां आयगा भी नहीं।

(जवाहर आती है।)

जवाहर : मोती !

मोती : (चौंक कर) मां !

जवाहर : निरंजन कहां गया ?

मोती : (सुनी अनसुनी एक करके) तुमने यही कहा था न मां, उसकी दौलत छीन लो, उसके पंख नोच लो, उसे दाने-दाने के लिए मोहताज बना दो—

जवाहर : (प्रसन्न होकर) तो क्या सब कुछ तय हो गया ?

मोती : तुम यही कहती थी न, कि उसे धन सम्पत्ति का दर्प है, यह सब उससे ले लो !

जवाहर : क्या सब कुछ लिखा गया ?

मोती : हां, यह लो कागज, अब निरंजन कंगाल है, गरीब है, मोहताज है। तुम्हारे अपमान का बदला ले लिया गया।

[जवाहर प्रसन्न होकर मोती की बलाएं लेती है। मोती की आंखें सजल हो जाती हैं और वह पसीना पोंछने के बहाने आंसू पोंछ लेती है और दरवाजे की ओर बढ़ती है।]

— : (जाते जाते गुलशन से) गुलशन जाओ, यदि निरंजन आयें तो जो वह लायें, मेरे कमरे में पहुंचा देना !

[जवाहर कागज देखती है, उसकी आकृति पर

उल्लास की एक लहर दौड़ जाती है और वह कोच पर बैठ जाती है ।]

जवाहर : (जैसे अपने आप) निरंजन अब तुम मेरे बस में हो, मैं चाहूं तो तुम्हें फिर से लखपति बना सकती हूं। चाहूं तो दर दर की भीख मंगा सकती हूं । मैं क्या चाहूंगी, यह तुम पर निर्भर है । जाऊं, आज फिर अपने भाग्य की परीक्षा कर देखूं । अभी शायद निरंजन आता हो । आज मैं अपनी सबसे अच्छी साड़ी पहनूंगी । यदि निरंजन ने मेरी ओर हमदर्दी की आंखों से देखा तो वह फिर से धनाधीश हो जायगा, मैं अपना भी सब कुछ उसे दे दूंगी और यदि उसकी उपेक्षा में अन्तर न आया तो मैं उसे अपने मकान से बाहर निकलवा दूंगी—धक्के दे कर बाहर निकलवा दूंगी !

[तेजी से बायें दरवाजे से निकल जाती है। निरंजन कपड़ों का लिफ़ाफ़ा लिये दाखिल होता है । उसके पीछे गुलशन आती है ।]

गुलशन : बाबूजी, बाबूजी !

(निरंजन मुड़ता है ।)

निरंजन : (उसे लिफ़ाफ़ा देता हुआ) यह मोती को दे दो ।

[गुलशन लिफ़ाफ़ा लिये जाती है । निरंजन कमरे में घूमता है, सीटी बजाता है, गुनगुनाता है—'क्यों इन आंखों के पीछे'—और फिर सीटी बजाता है, मोती प्रवेश करती है, सीधी साधी साड़ी और ब्लाउज पहने हुए]

मोती : चलो !

निरंजन : मोती !

(मोती प्रश्नसूचक दृष्टि से उसकी ओर देखती है ।)

निरंजन : विश्वास नहीं होता !

मोती : किस बात का विश्वास नहीं होता ?

निरंजन : कि मेरे भाग्य का नक्षत्र इतना बलवान है ।

मोती : मेरे भाग्य का नक्षत्र उससे अधिक बलवान है ।

(दोनों चलते हैं, निरंजन रुकता है ।)

निरंजन : मोती !

मोती : निरंजन !

निरंजन : मोती, वहां सुख आराम न होगा, धन-वैभव न होगा ।

मोती : न हो, वहां तुम तो होगे, तुम्हारा प्यार तो होगा, सीधा-साधा जीवन तो होगा ।

निरंजन : तो चलो—

[दोनों दरवाजे की ओर बढ़ते हैं, गुलशन प्रवेश करती है ।]

गुलशन : बाई कहां चलीं ?

मोती : कहीं नहीं, मां आयें तो उन्हें यह लिफ़ाफ़ा देना—

[चले जाते हैं । बायें दरवाजे से सुन्दर वस्त्रों से आवृत्त लेकिन घबराई हुई जवाहर आती है ।]

जवाहर : गुलशन, गुलशन, मोती कहां गयी, यह उसके कमरे में गहने कपड़े क्यों बिखरे पड़े हैं ?

गुलशन : सीधे साधे कपड़े पहन कर निरंजन बाबू के साथ चली गयी हैं और आपके लिए यह चिट्ठी दे गयी हैं ।

(पत्र लेकर जवाहर जल्दी जल्दी पढ़ती है ।)

जवाहर : (पत्र पढ़ते हुए) प्यारी मां तुम्हें दौलत चाहिए थी, वह तुम्हें मिल गयी, मैं मुहब्बत चाहती थी, वह मैंने ले ली । इसलिए विदा ।

[जवाहर कोच के कोने में धंस जाती है और असह्य वेदना से पत्र के टुकड़े टुकड़े कर देती है ।]

जवाहर : कौन कहता है मैं दौलत चाहती थी, मैं तो निरंजन को उसकी दौलत लौटाने आई थी। दौलत, मैं दौलत नहीं चाहती।

[जेब से जायदाद का कागज निकाल कर पुर्जे पुर्जे करके हवा में उड़ा देती है]

— : (शून्य में देखते हुए) मोती मैं दौलत न चाहती थी, मैं भी मुहब्बत चाहती थी, लेकिन मुहब्बत अब मेरे भाग्य में कहां ? (दीर्घ-निश्वास छोड़ती है) अब वह तुम्हारे भाग्य में है। मुरझाये हुए फूल को कौन गले लगायेगा, सूखे गुलाब को कौन हार में पिरोयेगा ?

[ठंडी सांस भरती है, फिर उसी तरह पांव पसार लेती है, सिर पीछे दीवार के साथ जा लगता है, बायां हाथ कौच पर आ जाता है और दायां नीचे लटक जाता है।]

(पर्दा गिरता है।)

———

कामदा

पात्र

प्रमदा

कामदा

दम्मो

नाजो

मिस्रो

सहेलियाँ

दीवान साहब

कान्त

मुकुन्द

पल्टू

स्थान

कामदा का कमरा

[पर्दा दीवान बिन्दासरन की कोठी के एक खुले कमरे में उठता है। यह कमरा कदाचित् कामदा के पढ़ने अथवा शृंगार के काम आता है। क्योंकि कोच के सेट, तिपाइयों, मेज़-कुर्सी, पुस्तकों के रेक आदि के अतिरिक्त एक शृंगार-कैबिनेट भी यहां दिखाई देती है।

दायीं ओर का दरवाज़ा बाहर बरामदे में खुलता है इसके साथ एक बड़ी खिड़की है, जिससे बरामदे और उसके परे घास के टुकड़े का कुछ भाग दिखाई देता है।

बायीं ओर एक दरवाज़ा है जो कामदा के सोने के कमरे में खुलता है।

पर्दा उठते समय कामदा बहुमूल्य वस्त्राभूषणों में आवृत शृंगार-कैबिनेट के सामने खड़ी साड़ी में बरोच लगा रही है। एक सहेली खिड़की में खड़ी बाहर को देख रही है।

पार्श्वभूमि में शहनाई, बैंड और लोगों के शोर की कभी धीमी और कभी तेज आवाज आती है। बैंड कहीं दूर बज रहा है और धीरे धीरे निकट आ रहा है।

पर्दा उठने के कुछ क्षण बाद बैंड का शोर निकट आ

जाता है। शहनाई तनिक जोर से बज उठती है। खिड़की में बाहर की ओर तकती हुई सहेली पलट कर कामदा को देख, ठहाका मार कर हंसती है। लेकिन किस बात पर, इसका पता नहीं चलता। तभी बैंड बन्द हो जाता है। लोगों का शोर भी धीमा हो जाता है। नाजो दो सहेलियों के साथ भागी आती है।]

नाजो : अरे कम्मो.........वाह ! तू अभी बनाव-शृंगार कर रही है और उधर सब लोग आ गये हैं।

कामदा : मैं तो तैयार हूं, यह बरोच कम्बख्त लगता ही नहीं।

सहेली पहली : (खिड़की से देखते हुए) वे हैं शायद चन्द्रकान्त जी, तुम्हारे चुनाव को मान गये भई, हमारा तो उनसे अभी परिचय करा देना।

तीसरी सहेली : (बाहर से तेज तेज आते हुए) वाह ! आज तो पहचानी ही नहीं जाती कम्मो ! यह इतना रूप...... ......अरे किसे पराजित करने चली हो ? दूल्हा भाई तो पहले ही से.......

(हंसती हैं।)

नाजो : चारों खाने चित्त गिराना चाहती है कि उठ ही न सकें बेचारे !

कामदा : (क्रोध से) बस भी करो नाजो। यह नहीं कि ज़रा बरोच लगाने ही में मदद करो। उल्टे फबतियां कसे जा रही हो।

नाजो : अरे यह रूप न दिखाना उन्हें। नहीं डर जायेंगे। बड़े नाजुक मिज़ाज मालूम होते हैं दुल्हा भाई।

(हंसती हैं।)

कामदा : (क्रोध से) नाजो !

नाजो : अच्छा भाई गुस्सा क्यों होती हो, लगाये देते हैं बरोच !

(हँसती है) हमने तो सोचा था कि मिन्नो होगी तुम्हारे संग। नहीं हम तुम्हारे ओठों पर सुर्खी तक लगा देते।

कामदा : मिन्नो को तो हमारी सूरत तक से चिढ़ है।

नाजो : क्यों—क्यों आखिर ?

कामदा : वही मुक्की का झगड़ा।

पहली सहेली : मुक्की में और कान्त में क्या तुलना—कहां यह हृष्ट-पुष्ट हँसमुखता, यह सभ्यता, यह संस्कृति, जीवन का यह विशाल अनुभव, और कवि-सुलभ मधुरता और कहां वह श्री मुकुन्द बिहारी लाल की बुड्ढों जैसी सौम्यता और वही कोल्हू के बैल का सा जीवन।

नाजो : कोल्हू का बैल.........

(ठहाका मार कर हँस पड़ती है।)

पहलीसहेली : मैं सच कहती हूँ मैं जब मुक्की को देखती हूँ, मुझे कोल्हू के बैल की याद आ जाती है। घर से कालेज और कालेज से घर, बस ! और इधर कान्त जी हैं कि देश-विदेश घूम आये हैं।

नाजो : जीवन नाम ही इसका है कि जहां एक कदम रखा वहां फिर दूसरा नहीं रखा।

(दम्मो भागी आती है।)

दम्मो : जीजा जी आ गये हैं, कम्मो दीदी, और तुम अभी यहां बैठी हो।

[दीवान बिन्दासरन और उनकी पत्नी प्रमदा प्रवेश करते हैं।]

दीवान साहब : कम्मो बेटा, चन्द्रकान्त इधर आ रहे हैं। तुम लोग तनिक उनके पास बैठो।

(मिन्नो झिझकती हुई प्रवेश करती है।)

मिन्नो : कम्मो.......अरे मौसा जी, नमस्ते......नमस्ते मौसी जी ।

प्रमदा : अरे मिन्नो ! जीती रहो बेटी । बड़ी देर कर दी आने में । मुक्की नहीं आया ।

मिन्नो : बहुतेरा कहा मौसी जी, पर भैया का जी शायद ठीक नहीं ।

पहली सहेली : आओ मिन्नो जीजा जी से परिचय करें ।

प्रमदा : मिन्नो बेटा, तुम ज़रा पान बनवा लेती ।

मिन्नो : बेहतर मौसी जी । **(सहेलियों से)** तुम चलो, मैं अभी आई । ज़रा पान देख आऊँ ।

(चली जाती है ।)

नाजो : मिन्नो को पान देखने दो । चलो हम ज़रा कुछ जीजा जी का परिचय पायें । चलो कामदा ।

प्रमदा : देखो नाजो उन्हें अधिक तंग न करना ।

नाजो : (**जाते हुए**) नहीं चाची जी आप निशा खातिर रहें ।

(हँसती हुई चली जाती हैं ।)

प्रमदा : देखो मुक्की आया नहीं । मैं कहती थी न, वह न आयेगा ।

दीवान साहब : (**कमरे में चक्कर लगाते हुए**) मनुष्य है न आखिर, उसका न आना स्वाभाविक ही था **(लम्बी सांस लेते हैं)** भला मुक्की में तुम मां-बेटियों ने क्या दोष देखा ? कामदा की बात जाने दो, तुम भी तो उसके गुण गाया करती थीं । क्या दोष देखा आखिर तुमने उसमें ?

प्रमदा : दोष !

(कौच में धंस जाती है ।)

दीवान साहब : (**बैठते नहीं बराबर घूमते जाते हैं**) मुझे तो अब तक उससे अच्छा लड़का नहीं दिखायी दिया ।

प्रमदा : किन्तु कान्त........

दीवान साहब : तुम दोनों को पसन्द है तो मुझे भी पसन्द है, लेकिन मुकुन्द को मैं उससे कहीं अधिक पसन्द करता हूँ। और मैं जानता हूं, जितना वह कामदा को चाहता है।

प्रमदा : हां किन्तु...........

दीवान साहब : फिर उसमें दोष क्या देखा तुम लोगों ने ?

प्रमदा : दोष क्या होता, वह कामदा के योग्य नहीं।

दीवान साहब : यही तो मैं पूछ रहा हूं कि वह क्यों कामदा के योग्य नहीं।

प्रमदा : आप इतनी बार पूछ चुके हैं और मैं इतनी बार बता चुकी हूँ—घर उसका साधारण है, नौकरी उसकी साधारण है और फिर.....

दीवान साहब : किन्तु प्रमदा, वैवाहिक सुख केवल धन-दौलत पर अवलम्बित नहीं। यह तुम अच्छी तरह जानती हो। लड़का तो बहुत अच्छा था और मैं कहता था कि......

प्रमदा : सोचो मेरी कामदा किसी गरीब के साथ बिता सकती है।

दीवान साहब : जब तुम्हारी हमारी शादी हुई तो घर में क्या था। गृहणी सुघड़ होनी चाहिए।

प्रमदा : (हँसते हुए) इस प्रशंसा के लिए धन्यवाद। पर सच जानिए कामदा मुक्की के संग चार दिन भी बसर नहीं कर सकती। हमारा आपका जमाना और था। मां बाप ने जहां ब्याह दिया बैठ रहे। कामदा तो धन-ऐश्वर्य में पली है।

दीवान साहब : किन्तु कामदा उसे नापसन्द नहीं करती।

प्रमदा : अब वह घर में आता है, आप का चहेता है। वह उससे कैसे नफ़रत करती और फिर मित्र और पति में तो अन्तर

है। हर मित्र पति नहीं हो सकता। मुझ से कामदा ने साफ़ साफ़ कहा है कि उसे मुकुन्द से प्रेम नहीं। उसी ने मुझे विज्ञापन देने को विवश किया है। जब बिरादरी संकुचित और अनुदार हो, अच्छे लड़कों की कमी हो तो क्या किया जाय ! जितने भी लड़के यहां आते हैं उनमें से एक भी कामदा को पसन्द नहीं।

दीवान साहब : विज्ञापन ! (**व्यंग से हंसते हैं**) मानो यह भी कोई नौकरी है। जगह खाली है आवेदन पत्र भेजिए। उँह, मुकुन्द लड़का बुरा नहीं......

प्रमदा : मुक्की को बुरा मैं भी नहीं समझती। किन्तु आप ही बताइए उससे कामदा का खर्च कैसे उठता ? कम्मो दो पार्टियों में भी जाती तो मुक्की का दीवाला पिट जाता। आखिर इतनी शिक्षा पाने के बाद, इतनी ऊँची सोसाइटी में घूमने के बाद, कम्मो दिन दिन भर चूल्हा तो न झोंकेगी।

दीवान साहब : खैर अब तो जो हो गया हो गया। घड़ी भर में शादी हो जायगी, और यह किस्सा सदा के लिए खत्म हो जायगा। (**कुछ क्षण चुपचाप घूमते हैं।**) किन्तु मुझे अब भी ऐसा आभास होता है कि कामदा मुकुन्द से नफ़रत नहीं करती। वह अब भी उससे प्रेम करती है (**लम्बी सांस भरते हैं**) जाने तुमने उसे क्या पढ़ा दिया ? मैं दोनों की मैत्री देखकर एक तरह से निश्चिन्त हो गया था।

प्रमदा : कान्त आपको पसन्द नहीं।

दीवान साहब : पसन्द को तो खैर कुछ नापसन्द भी नहीं। किन्तु मुक्की देखा-भाला लड़का है। यह तो अंधेरे में तीर चलाने सा लगता है।

प्रमदा : कान्त के सम्बन्ध में भी तो आपने पता लगा लिया है।

दीवान साहब : हां कान्त सम्पत्तिशाली है। हैदराबाद दक्खिन में उसके कई मकान हैं। दो एक गांवों का स्वामी है। वंश भी ऊंचा है। किन्तु घूमा-फिरा आदमी है। फिर इतने दूर के रहनेवाले को इतने निकट से देखा भी तो नहीं जा सकता और सम्पत्ति से वैभव का तो पता चलता है पर चरित्र का नहीं। मुक्की को हम बचपन से जानते हैं।

(पल्टू दरवाजे से झांकता है।)

पल्टू : मालिक जज साहब और दूसरे लोग आइ गवा हैं।

प्रमदा : (उसकी आवाज सुने बिना) क्या आप चाहते हैं आप का दामाद कुएं का मेढक हो ? आप नाहक मुक्की, मुक्की की रट लगा रहे हैं, कामदा को कान्त पसन्द है। (खिड़की से देखते हुए) देखिए वे आ रहे हैं। वह कितनी खुश है ! और मुझ से पूछिए तो मैं भी कान्त को बेहद पसन्द करती हूँ। ऐसा हंसमुख स्वभाव, बातचीत करने का ऐसा मधुर ढंग, बोल चाल में पद-प्रतिष्ठा का इतना ध्यान—मुक्की में यह सब कहां है ? अब मुक्की का जिक्र छोड़िए। यह तो अपशकुन है।

दीवान साहब : अपशकुन ! (व्यंग्य से हंसते हैं) तुम शकुनादि में अब भी विश्वास रखती हो प्रमदा।

पल्टू : (तनिक अन्दर आ कर) मालिक बाहर जज साहब बुलावत हैं।

प्रमदा : चलो, आते हैं। और कामदा से कहो अब तनिक अन्दर आकर बैठे।

पल्टू : कहि देत हैं।

(चला जाता है ।)

प्रमदा : चलिए, बाहर सब लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

[चले जाते हैं । कुछ क्षण बाद कामदा और कान्त बातें करते हुए प्रवेश करते हैं । कान्त में वह सब कुछ है जिसका उल्लेख कामदा की सहेलियों ने किया है । सुन्दरता, सभ्यता, संस्कृति, गोरा रंग, चौड़ा मस्तक, मस्त आंखें ! बढ़िया सूट पहने हैं । चाल-ढाल में अजीब सी लापरवाही है ।]

कांत : **(ओठों में हंसते हुए)** आपकी ये सहेलियां...... भगवान ही बचाये इनसे, ऐसी वाचालता तो मैंने यूरोप की तन्वियों में भी नहीं देखी ।

कामदा : मैंने इसीलिए उन्हें टाल दिया । पर मिन्नो से तो आप नहीं मिले । वह बड़ी सभ्य है—बिल्कुल अपने भाई की तरह ।

कांत : **(जैसे मिन्नो से उसे कोई दिलचस्पी न हो ।)** मैं सच कहता हूँ, मैंने दुनिया भर की सैर की है । ये चन्द दिन चन्द क्षणों की तरह बीत गये हैं । लगता है जैसे समय का पक्षी पर खोले उड़ा जा रहा है और मैं पलों और घड़ियों की सुध बुध भुलाये उस पर बैठा हूँ ।

कामदा : आप तो कवि हैं ।

कांत : आपकी निकटता ने मुझे कवि बना दिया है । हिन्दुस्तान में भी कई लड़कियों से मिलने का मुझे सुयोग मिला है । किन्तु एक साथ इतने गुण मुझे कहीं नहीं मिले । सुन्दरता, सुघड़ता, और कला की निपुणता ।

कामदा : आप मुझे बना रहे हैं ।

(कौच पर बैठ जाती है ।)

कांत : मैं सच कहता हूँ।

(उसके निकट बैठ जाता है।)

कामदा : आप भी तो इस कला में निपुण हैं ।

कांत : पहले तो यह कि मैं वास्तव में आपकी बराबरी नहीं कर सकता। फिर मुझे तो इतना घूमने फिरने का अवसर मिला है ।

कामदा : मामा और पापा ने मुझे भी अच्छी से अच्छी संगीत-संस्थाओं में शिक्षा दिलायी है । और फिर यही नहीं, केवल मेरे लिए वे बड़े बड़े संगीताचार्यों को यहां निमन्त्रित करते रहे हैं। हमारे यहां की संगीत सभाएँ नगर भर में प्रसिद्ध हैं।

कांत : और फिर आपका अमृत भरा कंठ .....

कामदा : शुक्र है उसे आपने नापसन्द नहीं किया।

[मित्रो खिड़की के सामने से गुजरती है । क्षण भर के लिए रुक जाती है।]

कांत : नापसन्द ! (ठहाका मार कर हँस पड़ता है । और फिर सहसा मित्रो को देखकर रुक जाता है।) यह कौन है ?

(मित्रो चल पड़ती है)

कामदा : मित्रो ! (आवाज देती है) मित्रो ! मित्रो ! आ जाओ (हँसती है।) मेरी सहेली है—मुक्की साहब की बहन।

कांत : मुक्की ! कौन मुक्की ?

कामदा : मेरे साथ ही पढ़ते थे । इसी साल एम० ए० करके यहां कालेज में पढ़ाने लगे हैं। पापा उनसे मेरी शादी करना चाहते थे । किन्तु मामा......

कांत : मुक्की (हँसता है) खूब नाम है ! मुक्की, लुक्की, दुक्की, बुक्की—मुझे बुक्की की याद आ गयी।

कामदा : वुक्की ! कौन वुक्की ?

कांत : यूरोप के सिनेमा या थियेटर हालों में सीटें बुक करने वाली लड़की को कहते हैं । किसी एकाकी युवक की सीट को किसी अकेली युवती की सीट के साथ और किसी अकेली युवती की सीट को किसी एकाकी युवक की सीट के साथ वुक करके वह कुछ शिलिंग या पेंस ज्यादा पा जाती है और यही चन्द सिक्के कई बार विचित्र प्रेम कथाओं की आधारभूमि बन जाते हैं ।

कामदा : (**मुस्कराकर**) आप की किसी प्रेम कथा की आधार भूमि तो नहीं बने ।

कांत : (**हँसता है**) किसी अँग्रेज-लेखक ने कहा है—मुझे समुद्र की उत्ताल तरंगों में फेंक दो और चाहो कि मैं किसी तख्ते को न पकड़ूं, यह असम्भव है (**लम्बी सांस भरता है**) यूरोप के जीवन का उद्दाम सागर और उसमें हिन्दुस्तान का एक अशक्त युवक (**हँसता है, फिर सहसा गम्भीर होकर**) किन्तु कामदा मैं विश्वासघाती नहीं। जो हो चुका हो चुका । विवाह के बाद तुम मुझ से अटूट वफ़ा पाओगी । तुमने स्वयं इतनी सोसाइटी देखी है । तुम्हें किसी से प्रेम ही नहीं हुआ, मैं इसका विश्वास नहीं कर सकता । किन्तु आज के दिन, जब हम एक नये जीवन का सूत्रपात करने वाले हैं, अपने अतीत के पट हम सदा के लिए बन्द कर देंगे और भविष्य के अनूठे, अनदेखे संसार में प्रवेश करेंगे । मैं भरसक प्रयास करूंगा कि वह संसार तुम्हें पसन्द आये । उस दुनिया में तुम्हारा दिल न ऊबे । उस दुनिया में तुम सदा

मुझे अपने साथ पाओ । उसकी रंगीन घाटियों और स्वर्णिम चोटियों पर हम साथ साथ जायें और...... और उसकी अंधेरी गुफाओं में भी हमारे हाथ एक दूसरे के हाथ से बंधे रहें ।

कामदा : मैं प्रयास करूंगी मैं आपके योग्य बन सकूं ।

[मिन्नो फिर खिड़की के सामने से गुज़रती है पर रुकती नहीं ।]

कांत : वह मिन्नो फिर आयी, शायद वह तुमसे मिलना चाहती है ।

(पल्टू दरवाजे से झांकता है ।)

पल्टू : बड़ी बिट्टी, एक मेहरारू दुल्हा भय्या से मिला चाहति हैं ।

कामदा : क्या ?

कांत : कौन ?

पल्टू : एक मेहरारू है, गुजरातिन जान परति हैं ।

कांत : मेहरारू, यह कौन सी बला है ।

पल्टू : औरत, औरत ।

कांत : **(चौंक कर)** औरत ! राधा फूफी न हों । सुना था वे काशी का दर्शन करने को आयी हुई हैं ।

पल्टू : उधर बइठा आवा हूँ, हवा घरे मां ।

कांत : मुझे जरा आज्ञा दीजिए कामदा जी ! मिल आऊँ उनसे । बड़ी गुस्सैल हैं हमारी राधा फूफी । **(चलते चलते खिड़की में देखकर हंसता है)** वह मिन्नो शायद फिर इधर को आ रही थी कि मुझे देखकर मुड़ गयी **(हंसता है)** अजीब सहेली है यह भी आप की ।

(हंसता हुआ चला जाता है ।)

कामदा : पल्टू, देना तनिक मिन्नो को आवाज़। वह तीन बार इधर से गयी है। कुछ कहना चाहती होगी मुझ से ?

[पल्टू चला जाता है। कामदा उल्लास से गुनगुनाने लगती है।]

तुम आगये सुख का सवेरा छा गया।

(मिन्नो प्रवेश करती है।)

मिन्नो : खुश हो कि तुम्हारे स्वप्नों का शहज़ादा मिल गया!

कामदा : मैं खुश हूँ। पर ना जाने क्यों मिन्नो कभी कभी हृदय के अज्ञात कोनों में कोई तार जैसे भयभीत होकर झन-झना उठता है। न जाने मेरा उल्लास अपनी सीमा पर पहुँच कर कांप उठा है, अथवा भविष्य के उद्यान की वीथियों का अँधेरा मन को त्रस्त किये देता है। कभी कभी मैं डर जाती हूँ मिन्नो कि उल्लास का यह तार कहीं इतना न तन जाय कि टूट जाय।

मिन्नो : तुम्हारा उल्लास अटूट हो बहन। किन्तु यही प्रार्थना है कि जिसका दिल तुमने तोड़ा है उसे भगवान संतोष और शान्ति दे।

कामदा : मैंने किसी का दिल नहीं तोड़ा।

मिन्नो : काश तुमने एक बार फिर सोच लिया होता।

कामदा : मैंने खूब सोच लिया मिन्नो, मुझे मुकुन्द से कोई घृणा नहीं। कदाचित मैं उन्हें पसन्द भी करती हूँ। पर मिन्नो सोचो, वे बड़ी कठिनाई से डेढ़ दो सौ रुपया कमा पाते हैं और डेढ़ दो सौ में तो आज एक साड़ी भी नहीं मिलती।

मिन्नो : स्त्री चाहे तो डेढ़ दो सौ में.........

कामदा : (शब्दों पर जोर देते हुए) स्त्री चाहे तो—किन्तु मिन्नो मैं चाह कर भी ऐसा नहीं कर सकती। याद है न

कि इंटरमीडियेट में हमने योंही आवेश में आकर विज्ञान ले लिया था। उस समय हमें रसायन-शास्त्र के चमत्कार बड़े आकर्षक लगते थे--किस प्रकार विभिन्न वस्तुएँ मिल कर एक सर्वथा नयी चीज बन जाती हैं; किस प्रकार दो तार मिला देने से विद्युत की चिनगारियां फूट निकलती हैं; किस प्रकार पानी के तल में चमचम शीशे के श्वेत टुकड़ों से, नन्हें नन्हें क्रिस्टिल जम जाते हैं। यह सब जादूगरी हमें बेतरह अपनी ओर खींचती थी। किन्तु शीघ्र ही हमें यह पता चल गया कि विज्ञान में केवल ये दिलचस्पियां ही नहीं, बल्कि अत्यन्त गहन फ़ारमूले भी हैं। मुक्की से मेरे विवाह का भी यही अन्त होता। मुक्की अच्छे हैं, बुद्धिमान् हैं, सच्चरित्र हैं, किन्तु उनके साथ मेरा विवाह भी उसी तरह असफल होता, जिस तरह विज्ञान में हमरी दिलचस्पी।

मिन्नो : (आश्चर्य से) किन्तु विवाह से विज्ञान का क्या सम्बन्ध ?

कामदा : बात वही है। विवाह के वाह्य-आकर्षण के पीछे विज्ञान के गहन फारमूलों सी जीवन की जटिल समस्याएँ भी छिपी हैं। मेरे और मुक्की के बीच में वे समस्याएँ आर्थिक थीं। मैं नहीं चाहती कि हमारा जीवन उन आर्थिक चट्टानों से टकरा कर चूर चूर हो जाय।

मिन्नो : किन्तु कामदा, यदि नारी चाहे तो निर्धन की कुटिया भी राजमहल हो सकती है।

कामदा : इसके लिए जीवन भर का त्याग चाहिए! और मैं सच

कहती हूँ मिन्नो, मैं अपने जीवन को अपनी समाधि बनाने के लिए तैयार नहीं।

मिन्नो : समाधि ?

कामदा : समाधि नहीं तो और क्या। कुटिया को महल बनाते बनाते मिन्नो, जीवन समाप्त हो जायगा और जब मैं इस योग्य हूँगी कि उस महल की बहार देख सकूं तो दिल मर चुका होगा और जीवन की अन्तिम हँसी भी उस विवाह की भेंट हो चुकी होगी। मैं अपने आप से डरती हूँ मिन्नो ! मेरा स्वभाव तुमसे छिपा नहीं है। मैं उस वातावरण में न रह सकूंगी। ऐसे विवाह की कल्पना तक से मेरा हृदय कांप जाता है।

मिन्नो : तुमने केवल अपनी कल्पना में विवाह का ऐसा भयानक चित्र खींच रखा है। मैं मानती हूँ कि रुपया बड़ी चीज है। मैं यह भी मानती हूँ कि विवाह का एक आर्थिक पक्ष भी है। किन्तु वह आर्थिक पक्ष ही सब कुछ है, यह मैं नहीं मानती। जिन शादियों की नींव आर्थिक आवश्यकताओं पर रखी जाती है, वे बहुत कम सफल होती हैं। शादी जब तक दो दिलों की नहीं होती, असफल रहती है।

कामदा : तो हो सकता है कि मुझे मुकुन्द से उतना प्रेम नहीं कि मैं इस पक्ष को एक दम से भुला दूं। दिनरात के सोच-विचार के बाद मैं इसी परिणाम पर पहुँची हूँ कि मैं उस तरह के जीवन को सफल नहीं बना सकती।

मिन्नो : (लम्बी सांस लेती है) जाने भगवान को यही स्वीकार है कि भैया घुटघुट कर मर जायं (आर्द्र कंठ से)

मैं क्यों तुम्हारे जीवन में आ गयी। क्यों मेरे कारण भैया तुम्हारे जीवन में आ गये।

कामदा : पर तुम्हारे कारण कैसे ?

मिन्नो : मैं ही कम्बख्त तो इस सारी मुसीबत की जड़ हूं (लम्बी सांस लेती है।) शायद मैं स्वयं तुम्हें इतना चाहती थी—इतना कि तुम्हारा कहीं दूर चला जाना मुझे स्वीकार न था। मैं चाहती थी कि सहेली के दर्जे से उठ कर तुम मेरी भाभी बन जाओ। और मैंने मुकुन्द भैया के दिल में तुम्हारे लिए अनुराग जगा दिया।

कामदा : तुमने।

मिन्नो : मैंने तुम्हारे रूप की, गुण की, कला-कौशल की प्रशंसा करके उनके हृदय में तुम्हारे प्रेम की प्रगाढ़ भावना को जगा दिया। वे यहां आने लगे। उनके हृदय में एक अस्पष्ट सी आशा जग उठी। तुमने उनसे नफ़रत भी तो नहीं की।

कामदा : नफ़रत !

मिन्नो : काश, तुम उनसे नफ़रत करतीं। काश आशा के अंकुरित होने के पहले ही उसका गला घोंट देतीं—वे लम्बी सैरें, वे अकेली मुलाकातें, वे टेबल-टैनिस और बैड-मिंटन की बाज़ियां और.........

कामदा : तुम भूलती हो। सभ्य समाज के शिष्टाचार का तगादा.........

मिन्नो : तुम्हें मेरे सिर की कसम कम्मो, सच कहना तुम केवल शिष्टा- चार के लिए भैया से मिलती थीं, तुम्हारे हृदय में उनके लिए तनिक भी जगह नहीं थी। तुम उनसे तनिक भी.........

(पल्टू प्रवेश करता है ।)

पल्टू : बड़ी बिटटी, पुरोहित आइ गवा हैं, तुमका बुलावत हैं । लगनवां का समय तो निकट आई गवा ।

[दीवान साहब घबराये हुए से प्रवेश करते हैं सहसा बैंड और शहनाई का स्वर बन्द हो जाता है ।]

दीवान साहब : ठहरो पल्टू, ज़रा भाग कर बहू को इधर भेजो । और कम्मो, तुम ज़रा मिन्नो के साथ बराबर के कमरे में बैठो ।

कामदा : अच्छा पापा, आओ मिन्नो !

(दूसरे कमरे में चली जाती है ।)

दीवान साहब : हे मेरे भगवान (बेचैनी से कमरे में घूमते हुए) लाख कहा था, इस झंझट में मत पड़ो, लड़का सामने है, देखा भाला है । शादी कर दो (लम्बी सांस भरते हैं ।) कहां हैदराबाद दक्खिन और कहां यह प्रयाग (फिर कमर में घूमने लगते हैं) और कितना भोला भाला, सभ्य और संस्कृत दिखायी देता था ।

(प्रमदा प्रवेश करती है ।)

प्रमदा : क्या बात है, आपने मुझे इस वक्त बुला भेजा, उधर पुरोहित आ गये हैं । कामदा कहां है ?

दीवान साहब : कामदा को छोड़ो, अपनी इज्ज़त बचाने की फ़िक्र करो ।

प्रमदा : (घबरा कर) क्या हुआ ?

दीवान साहब : हे मेरे भगवान (बेचैनी से घूमते हैं) लाख बार कहा था, लाख समझाया था........

प्रमदा : कुछ कहो भी, हुआ क्या, बस घूमे जा रहे हो । बताते कुछ नहीं ।

दीवान साहब : मालूम है वहां क्या हुआ ? भरी सभा में कांत की पहली पत्नी ने.........

प्रमदा : पहली पत्नी ने......

दीवान साहब : बल्कि तीसरी पत्नी ने......

प्रमदा : तीसरी पत्नी.......

दीवान साहब : हां ! इसके पहले तीन शादियां करके तीन लड़कियों का जीवन वह नष्ट कर चुका है। वह एक परले सिरे का दुराचारी और लंपट है। उसकी एक पत्नी विलायत में है, एक कलकत्ते में उसकी जान को रो रही है। इस तीसरी को उसने बम्बई में फांसा। अंग्रेजी में लोकोक्ति है कि "हर चमकदार चीज़ सोना नहीं होती।" --किन्तु तुम तो बस उसकी सभ्यता, सुन्दरता, हंसमुखता और न जाने किस किस 'ता' पर मरी जा रही थीं।

प्रमदा : हे मेरे भगवान ! किन्तु यह बम्बई से यहां कैसे आ गयी।

दीवान साहब : (चिढ़कर) मानो यदि वह यहां न आ जाती तो अच्छा होता। मैं तो भगवान को लाखों धन्यवाद देता हूं कि वह इस वक्त आ गयी। नहीं घड़ी बाद आती तो........

(दांत पीसते हुए घूमते हैं।)

प्रमदा : हे मेरे भगवान अब क्या होगा ?

दीवान साहब : अपमान और जगहँसाई......नगर भर के प्रतिष्ठित लोग आये हुए हैं। तुम लोगों को इसी तरह मेरी नाक कटानी थी।

प्रमदा : हम लोगों ने.............

दीवान साहब : यह तर्क-वितर्क का समय नहीं प्रमदा, सोचो, भगवान के लिए सोचो ! अपने कुल की मान मर्यादा के लिए सोचो ! इस झंझट से निकलने की कोई तरकीब सोचो !

प्रमदा : हे मेरे भगवान अब क्या होगा !

दीवान साहब : हे मेरे भगवान, हे मेरे भगवान करने से कुछ न होगा विवाह का समय हो, भांवरों की तैयारी हो, सारा शहर इकट्ठा हो, और उस समय वर की पहली पत्नी कहीं से निकल आये—तीसरी पत्नी—और भरी सभा में घोषणा कर दे कि उसका पति अव्वल दर्जे का दुराचारी है, और इससे पहले दो लड़कियों को धोखा दे चुका है। (दांत पीसते हैं।) मैं उसे गोली से उड़ा देता, फिर चाहे........ (**बेचैनी से घूमने लगते हैं फिर रुक कर**) लोग क्या क्या बातें न बनायेंगे। दीवान बिन्दासरण की लड़की का विवाह और...... (**बेबसी की लम्बी सांस भरते हैं**) हे मेरे भगवान (**फिर घूमते हैं**) मैं कहता था, मुकुन्द बहुत अच्छा लड़का है, शिक्षित है, भला और सच्चरित्र है। लेकिन तुम लोग.......

प्रमदा : (**जैसे सहसा कोई तरकीब सूझ गयी हो**) मैं कहती हूं, मुक्की को ही क्यों न वर की जगह ला बैठाओ।

दीवान साहब : ..... लेकिन मुकुन्द।

प्रमदा : मैं तो शुरू से ही उसे पसन्द करती हूं। पर कामदा की हठ ने मेरी एक पेश नहीं जाने दी।

दीवान साहब : लेकिन कामदा.......

प्रमदा : मैं उसे मना लूंगी। मैं आधी सम्पत्ति उसके नाम लिख दूंगी। वह नहीं चाहती उसका पति उसके पिता के टुकड़ों पर पड़ा रहे।

दीवान साहब : पगली ! तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताया। बुलाओ उसे !

प्रमदा : मैं कहती हूं, मैं उसे मना लूंगी। आप कार लेकर जाइए

और मिनटों में मुक्की को लेकर आ जाइए.....किन्तु मुक्की मान भी जायेगा, इस बात को जानने के बाद।

(पल्टू दरवाजे से झांकता है।)

पल्टू : वहू जी पुरोहित जी पूछित हैं.........

दीवान साहब : मुकुन्द बहुत भला लड़का है। मुझे सदा पिता तुल्य मानता रहा है। मैं अपनी पगड़ी उसके पैरों पर रख दूंगा। और मुझे विश्वास है वह जरूर मान जायगा कामदा को.....

पल्टू : वहू जी पुरोहित पूछित हैं।

प्रमदा : मैं कहती हूं आप कामदा की चिन्ता न करें। इतना अपमान कराने के बाद क्या वह चाहेगी कि हम आत्म-हत्या कर लें। आप कार लेकर जाइए और दो मिनटों में मुकुन्द को लेकर आ जाइए।

दीवान साहब : मैं अभी आया।

(तेज तेज निकल जाते हैं।)

पल्टू : वहू जी पुरोहित पूछित हैं—हमका काव हुकुम होत है।

प्रमदा : उनसे कहो, अभी बैठें। विवाह होगा। इसी घड़ी!

पल्टू : लेकिन वहू जी......

प्रमदा : (लगभग चीखकर) जैसे तुमसे कहा जाकर कह दो।

[पल्टू चला जाता है। कामदा दूसरे कमरे से भागी भागी आती है।]

कामदा : (रोने की सीमा को पहुंचे हुए स्वर में) मामा (मा के गले से लिपट जाती है) मामा (सिसकते हुए) मैंने सब कुछ सुन लिया है। मेरे हट के कारण आपको इतना अपमान सहना पड़ा।

(फिर लिपट कर रोने लगती है।)

प्रमदा : बस, बस बेटा, यों जी छोटा नहीं किया करते। हम सब कुछ अपने ऊपर झेल लेंगे और किसी बात की हवा तक तुम्हारे पास न फटकने देंगे।

कामदा : (सिसकते हुए) मामा.........

प्रमदा : तेरे पापा कितना चाहते थे कि मुकुन्द से तेरा विवाह कर, वे तुम दोनों को घर ही में रखें। किन्तु तेरे स्वाभिमान को यह स्वीकार न हुआ। मैं जानती थी कि तू मुकुन्द को नापसन्द नहीं करती, किन्तु बेटी तू नहीं जानती कि धन-सम्पत्ति की बाहर से रंगीन और दृढ़ दिखायी देने वाली लकड़ी को अन्दर से कितने घुन लगे होते हैं।

कामदा : किन्तु मामा......

प्रमदा : अब किन्तु परन्तु नहीं बेटी ! तेरे पिता की मोती जैसी आब मिट्टी में मिल जायगी। मैं किसी को मुंह दिखाने योग्य न रहूँगी। शहर भर को मालूम है कि तेरे पापा मुक्की को पसन्द करते हैं। यदि कान्त की जगह मुकुन्द बैठ जायगा तो अधिकांश लोग प्रसन्न ही होंगे। कितनी बड़ी पार्टी का प्रबन्ध कर रखा है तेरे पापा ने ? मेहमानों को कैसी निराशा होगी ? और तेरे बूढ़े पापा ......क्या यह आघात वे सह सकेंगे। उनका गिरा हुआ स्वास्थ्य......

कामदा : किन्तु मामा मुझे मुक्की से प्रेम नहीं।

प्रमदा : प्रेम एक सापेक्ष सी वस्तु है बेटी ! क्या अब तू कान्त से प्रेम करती है। यदि तू अब भी कान्त से प्रेम करती है और शादी करना चाहती है तो साफ़ कह दे। फिर चाहे जो हो मैं.....

कामदा : मैं उससे घृणा करती हूँ, मैं उसकी शक्ल तक देखना पसन्द नहीं करती। मुझे अभी नाजो ने बताया, वह अपनी स्त्री को पिस्तौल मारने लगा था।

प्रमदा : तुम मुकुन्द को पसन्द करती हो कामदा और इस पसन्द को प्रेम का रूप धरते देर नहीं लगती बेटी ! मुक्की तेरे लिए बहुत अच्छा पति साबित होगा।

कामदा : किन्तु मैं उसको सब कुछ बता दूंगी—कि मुझे उससे प्रेम नहीं, किन्तु मैं.........

[बाहर से मुकुन्द और दीवान साहब बातें करते आते हैं।]

मुकुन्द : आपके लिए दीवान साहब मैं जान तक हाज़िर कर सकता हूँ, किन्तु यह कामदा के जीवन का प्रश्न है। मैं उसकी इच्छा के बिना कभी उससे शादी नहीं कर सकता।

प्रमदा : (धीमे स्वर में) वे आ रहे हैं। उनका दिल न तोड़ना बेटा। अपने पापा का दिल न तोड़ना।

दीवान साहब : (निकट आकर) मुक्की तो गेट पर ही मिल गया। इधर ही आ रहा था। कहो, कामदा से पूछा ?

प्रमदा : हमारी इज्जत क्या कामदा की इज्जत नहीं ! किन्तु मुकुन्द ....

दीवान साहब : मुकुन्द तैयार है।

(मिन्नो दूसरे कमरे से बगूले सी प्रवेश करती है।)

मिन्नो : क्या कहा ? मुकन्द तैयार है ! क्यों भैया, तुम कामदा से शादी करने को तैयार हो ? क्या स्वाभिमान तुम्हें छू भी नहीं गया ? धन-ऐश्वर्य क्या ऐसे ही प्रिय हो गये तुम्हारे लिए कि छोड़ा हुआ ग्रास.....

मुकुन्द : (क्रोध से लगभग चीखकर) मिन्नो !

मिन्नो : अभी कुछ क्षण पहले मैं तुम्हारी ओर से, अपनी ओर से कामदा से प्रेम की भीख मांग रही थी । मैं जानती थी कि कम्मो के बिना तुम्हारा जीवन नष्ट हो जायगा, तुम जीवन को जीना छोड़ दोगे । किन्तु मैंने यह स्वप्न में भी न सोचा था कि यह प्रेम तुम्हें इतना नीचे गिरा देगा ।

मुकुन्द : मिन्नो तुम्हें शर्म नहीं आती, अपनी सहेली.........

मिन्नो : (मुंह बिचका कर) सहेली !

मुकुन्द : (अपनी बात जारी रखते हुए) अपनी सहेली की इज्ज़त, उसके माता-पिता की इज्ज़त का ज़रा भी ख्याल नहीं तुझे ! मैं दीवान जी को पिता के समान मानता हूं और इनकी इज्ज़त की खातिर मैं अपने सारे मान-अपमान को छोड़ सकता हूं । किन्तु मैं कामदा से हरगिज़ शादी करने को तैयार नहीं । वह मुझ से प्रेम नहीं करती और मैं नहीं चाहता कि इस अवसर का अनुचित लाभ उठाऊं ।

प्रमदा : कम्मो को तुमसे वास्तव में प्रेम है बेटा । मां होकर मैं इसे अच्छी तरह जानती हूं ।

मुकुन्द : (कामदा से) देखो कामदा, यह दोनों के जीवन का प्रश्न है । अपने दिल को टटोल कर देखो, क्या वहां मेरे लिए ज़रा भी जगह है? क्या तुम मुझ से तनिक भी प्रेम करती हो ?

कामदा : (चुप रहती है ।)

प्रमदा : कम्मो !

कामदा : कदाचित मैं केवल अपने आप से प्रेम करती हूं । मैं न चाहती थी कि मेरा संगी मेरे पिता के रुपये पर मौज मनाये । मैं ऐसा संगी चाहती थी जो मेरे वातावरण

के अनुसार मुझे रख सके और इसीलिए मैं आप के साथ विवाह के पक्ष में न थी, किन्तु मैंने कभी आप से नफ़रत नहीं की। मैं प्रयास करूंगी कि अपने आप को आपके वातावरण में ढाल सकूं। किन्तु आप को मेरे पिता के रुपये का ध्यान......

मुकुन्द : तुम अवसर तो दो कामदा, मैं क्या नहीं कर सकता ?

दीवान साहब : (उल्लास से) मुक्की क्या नहीं कर सकता। मुक्की परिश्रमी है, दयानतदार है। मुक्की चाहे तो पहाड़ सर कर सकता है। क्या मैंने यह धन-सम्पत्ति स्वयं पैदा नहीं की ? क्या मैं अपने ससुर की जायदाद पर पला ? (जाते हुए)पल्टू, पुरोहित से कहो विवाह की तैयारी करें...दुल्हा दुल्हिन आ रहे हैं (फिर स्वयं उसके पीछे जाते हैं, बाहर से उनकी आवाज़ सुनायी देती है।) दुल्हा दुल्हिन आ रहे हैं ! दूल्हा-दूल्हिन आ रहे हैं !

[बैंड सहसा फिर बज उठता है। और शहनाई का स्वर भी सुनायी देने लगता है।]

(पर्दा गिरता है।)

पक्का गाना

पात्र

नईम

इरशाद

गफ़्फ़ार

हमदम

दीपक

रमेश

राजेश

अफ़ज़ल

अमजद

अकबर

हनीफ़

गणेश

खन्ना

असग़र हुसैन

उस्ताद हातिम अलीख़ां

चमेली

समय

संध्या

स्थान

चौपाटी—बंबई

[चौपाटी के रेतीले किनारे पर एक तरफ़ बेदिग टैंक (Bathing tank) की ओर को, जरा एकान्त में, दरियां बिछाये दर्शन के अध्यापक प्रोफ़ेसर नईम, 'लाईट सिंगर' उस्ताद असग़र हुसेन, तबलची गफ़्फ़ार, सारंगी नवाज इरशाद, बंसरी बजाने वाले रामप्रसाद, कवि हमदम, गीतिकार पं० दीपक, डायलाग-राइटर रमेश और एक-दो अन्य साथी बैठे हैं। संध्या का समय है और यद्यपि चौपाटी तट पर इतवार की-सी रौनक नहीं, फिर भी पृष्ठभूमि में रेत पर बैठी हुई कुछेक टोलियां डूबते सूरज की छाया में समुद्र के बदलते हुए रंगों का आनन्द लेती दिखाई देती हैं। समुद्र उतर गया है और गीले सैकत-तट पर अस्तोन्मुख सूरज की किरणें एक अद्भुत पीला सुनहरी प्रतिबिम्ब बिखेर रही हैं, जिसमें कहीं-कहीं इन्द्र-धनुष के सातों रंग झलक उठते हैं।

प्रो० नईम यद्यपि स्थानीय कालेज में दर्शन के अध्यापक हैं, किन्तु राग, रंग और काव्यकला से उन्हें गहरा प्रेम है, पुरखे इतना पैसा छोड़ गये हैं कि वे अपनी इच्छा के अनुसार इन कलाओं का रस-पान कर सकें! बम्बई

में मकानों के अभाव के कारण उन्हें अभी रुचि के अनुसार घर नहीं मिल सका, इसलिए कभी जुहू, कभी दादर और कभी चौपाटी के संकत-तट पर वे अपने कलाकार मित्रों के साथ जा पहुंचते हैं और नित्य नये रंग बदलते सागर के दर्शन के साथ साथ संगीत और कला का भी रस पाया करते हैं।

पर्दा उठते समय उस्ताद असग़र हुसेन एक हल्का फुल्का गाना सुना रहे हैं :]

पपिहा पी की बोली न बोल!
कूक से तेरी हूक उठत है, नयनन झर झर नीर बहत है,
बिरह अगन में आप जरत हूं,
पी बिन करूं कलोल।
पापिहा, पी की बोली न बोल!

नईम : लाहौल विला कुव्वत, बिरह अगन में जल कर कलोल करूं!

[पृष्ठभूमि में अंधेरा बढ़ जाता है और समुद्र की लहरें गहरी-नीली, गदली और फिर काली पड़ जाती हैं। नाटक ज्यों ज्यों बढ़ता है, पृष्ठ भूमि में टोलियां बढ़ती जाती हैं। असग़र हुसेन प्रो० नईम की बात नहीं सुनते, बराबर गाये जाते हैं!]

असग़र हुसेन : धीर धरो मन मानो सजनी, काहे व्याकुल निस-दिन रजनी
पिया मिलन की आस न छोड़ो,
दुख के द्वार न खोल!
पपिहा, पी की बोली न बोल!

नईम : बस करो उस्ताद, बस करो! तुमसे अमृत बरसाने के लिए कहा था। ज़हर पिलाने के लिए नहीं।

असग़र हुसेन : ज़हर !

नईम : यही जो तुम इस गीत के रूप में बराबर हमें पिलाये जा रहे हो।

असग़र हुसेन : (चकित) यह पहेली मेरी समझ में नहीं आई, प्रोफेसर साहब !

नईम : भाई मेरे इस गीत के बोल इतने लचर और लग्व हैं कि....

असग़र हुसेन : क्यों उनमें क्या बुराई है ?

नईम : मैं पूछता हूँ, उनमें भलाई क्या है ? (हँसकर) बिरह की आग में जलनेवाला रोये या कलोल करे, जो कुछ भी करेगा, आप ही करेगा। फिर पहले बन्द में शब्द 'आप' फ़ज़ूल नहीं तो क्या है ! और फिर उस्ताद, बिरह के दुख में जलते हुए किसी को कलोल करते आज ही सुना है।

इरशाद : क्यों कलोल तो.........

नईम : (हाथ के इशारे से उसे चुप कराते हुए) हिन्दी का शब्द है। इसका मतलब है—साथी के संग खेलना—मुहब्बत का खेल। यहां साजन तो विदेस में बैठे हैं और सजनी उनकी याद में जलती हुई कलोलें कर रही है। लाहौल विला कुव्वत ! फिर दूसरे बन्द में निसि-दिन के साथ रजनी....कमबख्त गीत लिखनेवाले को यह भी मालूम नहीं कि निस-दिन का मतलब ही रात-दिन है। —निस दिन रजनी.......

(जोर से ठहाका मारते हैं।)

गफ़्फ़ार : (तबले को एक तरफ़ करके) लेकिन उस्ताद साहब जो गीत गा रहे हैं उसे तो फिल्म स्टार दामोदर और बाई नज़ीर बाई ने गाया है।

इरशाद : और इसकी तर्ज़ें मशहूर म्यूज़िक डायरेक्टर कुन्दनलाल ने बनाई हैं ।

नईम : अगर उस्ताद गफ़्फ़ार हैदर और मास्टर इरशाद अपनी दिलचस्पियों को तबले और सारंगी तक ही रखें तो बेहतर हो । (हँसते हैं ।) इसमें शक नहीं भाई, कि इसकी तर्ज एक मशहूर म्यूज़िक डायरेक्टर ने बनाई है और इसे एक मशहूर फ़िल्म स्टार ने गाया है और एक मशहूर डायरेक्टर ने डायरेक्ट भी किया है, लेकिन इस गीत का लिखनेवाला शायर नहीं यकीनन[1] कोई घसियारा है । क्यों हमदम साहब ?

हमदम : अ-म्यां, इन फ़िल्मवालों से खुदा ही बचाये । एक बार एक फ़िल्म डायरेक्टर से मुलाकात हुई । कहने लगे—'हमें भी कोई गीत वीत दीजिए हमदम साहिब ।' मैंने कहा—'गुलाम हाज़िर है, जैसा कहिए लिख दूं ।' फ़रमाने लगे, 'वह आपने फ़िल्म 'खज़ानची' देखा होगा । उसका गाना है—मुझे मार गयी, मारगयी रे ।' मैंने कहा, 'हुज़ूर फिल्म तो नहीं देखा, लेकिन गाना इतनी बार सुना है कि कान पक गये हैं । लगभग रोज रेडियो पर ब्राड-कास्ट होता है ।' बोले, 'बस, उसी की तरज़ पर एक फड़कता हुआ सा गीत दीजिए । मौका बस इतना ही समझ लीजिए कि एक सेट के सामने एक नर्तकी गाती है, लेकिन नर्तकी अलामत[2] है भारत के मज़दूर तबके[3] की और वह गाने ही गाने में बता देती है कि किस तरह पूंजीपति ने उसे लूट लिया है ।'

नईम : (हँसकर) वाह !

---

१. निश्चय ही; २. प्रतीक; ३. वर्ग ।

हमदम : मैंने लिखा—

मैं तो बाज आई, बाज आई, बाज आई रे
जालिम, दिलके लगानेसे, जी के जलानेसे, तेरे बहकानेसे
बाज आई—
अँखियां मेरी मदमस्तानी, कर डालीं बेनूर
हाय यह मेरी मस्त जवानी आज थकन से चूर
लूट लिया, हाय लूट लिया, जालिम लूट लिया रे
तुमने ! मुझको बहानेसे, जीके जलाने से, तेरे बहकाने से,
बाज आई—

[कुछ लोग और आ शामिल होते हैं। नईम और दूसरे साथी हमदम साहब को दाद देते हैं।]

नईम : खूब !

इरशाद : वाह-वा, क्या कहने हैं ?

गफ्फ़ार : क्या ख़याल बांधा है

दीपक : एक दम सुन्दर !

हमदम : लेकिन डायरेक्टर साहब ने यह सुनकर मुंह सिकोड़ा और बोले—इसमें कुछ सेक्स अपील नहीं। 'ज़ुल्फ़ कहे मेरे पेच निराले' में जो बात है वह पैदा नहीं हुई, (उपेक्षा और क्रोध से) नक्काल कहीं के !

(नईम आदि पूरे ज़ोरसे ठहाका लगाते हैं।)

— : और फिर ये म्यूज़िक डायरेक्टर—उन्हीं दो चार मशहूर चलती हुई ट्यूनों को मिलाया, स्टूडियो के शायर को बुलाया और कहा कि इस पर गीत लिख दीजिए। शायर ने गीत लिखा। उन्होंने सुनकर सिर हिलाया कि नहीं यह ट्यून में पूरा फिट नहीं होता। शायर ने कुछ यहां जोड़ और कुछ वहां तोड़, गीत को

टयून पर फ़िट कर दिया। रहा गीत का मतलब,सो वह रहा या ख़त्म हुआ, इससे किसी को ग़र्ज़ नहीं।

दीपक : बिल्कुल ऐसी ही घटना मेरे साथ भी घटी, हमदम साहब। एक रिकार्ड-कम्पनी में रिकार्डिंग जारी था। मुझ से एक गीत लिखने को कहा गया। रिकार्ड जल्दी ही भरा जाना था। मैं गीत लिखकर ले गया। उसका जो अंजाम म्यूजिक डायरेक्टर की टीका-टिप्पणी के बाद हुआ, उसका अनुमान आप उसे सुनकर ही लगा सकते हैं। गीत का एक बन्द था :

ब्रज की गलियां
सुन्दर कलियां
भौंरों सा रस लेने मुरारी
मुरारी, बिहारी
गिरिवर-धारी

म्यूजिक डायरेक्टर साहब ने जब टयून बनाई और उनकी आवश्यकता के अनुसार मैं ने अदला-बदली की तो गीत की सूरत यह बन गयी :

ब्रज की गलियां
सुन्दर कलियां
करें रंगरलियां
राधे !
भौंरों सा रस लेते
मुरारी
मुरारी, बिहारी, गिरवर धारी

रंगरलियां कौन करता है—ब्रजकी गलियां या सुन्दर कलियां ? फिर यह राधे क्यों और कहां से आ गयी और

इस सारे बन्दका अर्थ क्या हुआ ? इन सब बातों से मतलब नहीं । म्यूज़िक डायरेक्टर तो इसकी ट्यून पर झूमते । जब वे गाते हुए 'रंग रलियां' को ऊपर ले जाते और सिरको झटका देकर 'राधे' कहते और फिर स्वर को नीचे ले आते तो नाच कर रह जाते ।

रमेश : यह आपकी ऊपर नीचे की बात सुनकर मुझे हमदानी साहब की साजन अप्प (UP) और सजनी डाऊन (Down) वाली बात याद आ गायी ।

नईम : क्या ? साजन अप्प और सजनी डाऊन.......!

रमेश : आप जानते हैं, जब से अशोक कुमार और देविका रानी का दोगाना—'तुम मेरे साजन, तुम मेरी–तुम मेरे' ! जनता ने उठाया है, कोई भी फ़िल्म दो गाने के बिना पूरी नहीं होती । फिर गाने में साजन और सजनी के शब्द ज़रूर होने चाहिएं । एक बार एक हिन्दी कवि ने सजनी के स्थान पर 'आली' लिख दिया—'हम सजनी मांगता हैं' बंगाली म्यूज़िक डायरेक्टर चिल्लाये, 'इस जागा[1] सजनी होना चाहिए ।'

(और एक टोली आती है ।)

नईम : यह लीजिए सब रेडियो आर्टिस्ट भी आ गये । शायद अब जाकर रिहर्सल खत्म हुई है पीर साहब की । क्यों राजेश ?

राजेश : यह पीर साहब की रिहर्सल भी (बेज़ारी से सिर हिलाता है) भगवान बचाये उससे । 'वन देवी'[2] में कहीं से

---

१. जगह । २. वन देवी उर्दू के प्रसिद्ध नाटककार आगा हश्र काश्मीरी का नाटक है ।

किस्मत का मारा एक शब्द 'कृपा' आ गया। नसीम उसे 'क्रप्पा' कह रही थी। बस यह वक्त आ गया उसे सिखाते-सिखाते।

दीपक : कोई हिन्दी जाननेवाली आर्टिस्ट क्यों नहीं रखते यह रेडियोवाले।

राजेश : और कौनसा ठीक काम करते हैं ये। रेडियो का ज़िक्र छोड़िडए। आप जानते हैं यह मेरी दुखती रग है।

नईम : आइए, आइए। बैठिए। यह रमेश एक दिलचस्प किस्सा सुना रहे हैं—साजन अप्प और सजनी डाऊन।

राजेश और उनके साथी : (बैठते हुए) क्या ?

रमेश : हमदानी साहब को एक बार साजन और सजनीवाले एक दोगाने की टय़ून बनाने के लिए कहा गया। उन्होंने एक बहुत अच्छी टय़ून बनायी। पिक्चर के डायरेक्टर बंगाली थे। उन्होंने सुनी तो कहने लगे—साजन को अप्प (UP) मांगता है, सजनी डाऊन (Down) होना चाहिए। हमदानी साहब चकराये। चकित से डायरेक्टर के मुंह की ओर देखने लगे। आर्टिस्ट बड़े तन्मय हो कर गा रहे थे। वे सब अचानक रुक गये। 'साजन अप्प, सजनी डाऊन ! सजनी डाऊन होना चाहिए !' डायरेक्टर चिल्लाये, आस्ता (आहिस्ता) होना चाहिए।' और उन्होंने अपनी बेहद भोंडी और भद्दी आवाज़ में गाकर समझाया तो हम लोग समझे कि 'साजन' कहते वक्त स्वर ऊपर जाना चाहिए और सजनी कहते वक्त नीचे आना चाहिए।

नईम : साजन अप्प और सजनी डाऊन ! (ज़ोर से ठहाका मारकर हंस पड़ते हैं। इस ठहाके में दूसरों के अट्टहास

भी शामिल हो जाते हैं) न जाने लोग यह सब लचर गीत किस तरह मज़े ले-लेकर सुनते हैं ? मैं तो जब भी कभी इन फ़िल्म-स्टारों और रेडियो स्टारों के रिकार्ड सुनता हूँ, जी चाहता है कि कहीं से ये सब रिकार्ड इकट्ठे करके उनका अम्बार लगा दूं और फिर चुपके से उसे तीली दिखा दूं ।

रमेश : लेकिन और रिकार्ड बन जायेंगे । रिकार्डों को जलाने से क्या फ़िल्म कम्पनियां जल जायेंगी, कि रिकार्ड कम्पनियां भस्म हो जायेंगी, कि रेडियो स्टेशन भभूका बनकर उड़ जायेंगे या अनपढ़ डायरेक्टर, एक्टर, श्रोता, दर्शक खत्म हो जायेंगे । (**लेक्चर देने के अन्दाज़ में**) ज़रूरत इस बात की है कि यह सारे का सारा नज़ाम, यह सिस्टम, यह व्यवस्था बदली जाय । यह दासता, यह गुलामी...

दीपक : (**दोनों हाथ फैला कर**) शान्ति, शान्ति, शान्ति !

नईम : और मैं सोचा करता हूँ कि जहां लाखों रुपया आर्टिस्टों और सीन-सीनरी पर खर्च किया जाता है, वहां अच्छे शायरों और कहानी लेखकों को क्यों नहीं बुलाया जाता ।

हमदम : पंजाबी लोग जिसे 'भोला बादशाह' कहते हैं, आप भी नईम साहब बस उसी तरह के मेहरबान हैं । इस वक्त अच्छे से अच्छे कवि और कहानी लेखक फ़िल्म कम्पनियों में हैं । कौनसा तीर मार रहे हैं वे ? उनके, उन्हींके क्यों, किसी भी डायरेक्टर या एक्टर के हाथ में इख़्तियार ही क्या है ? सब मशीन के पुर्जे हैं । और इस मशीन की हत्थी प्रोडयूसर के हाथ में है ।

दीपक : प्रोडयूसर के भी नहीं, पूंजीपति के हाथ में, और पूंजीपति इस मशीन से जो कुछ पैदा करना चाहता है, वह यह

आपका आर्ट नहीं, बल्कि रुपया है। उसे गालियां खाकर भी रुपया मिल जाय तो उसे इसमें भी झिझक न होगी। वह धड़ाधड़ ऐसी फ़िल्में बनायेगा जिनमें सरमायेदारों को गालियां मिलें और उसकी जेब गर्म हो। लेकिन ज्योंही पब्लिक उनसे उकताई कि उसने फिर स्टंटबाजी शुरू की। सरमाये का इख़्तियार इंडस्ट्री से हटे तो कुछ हो।

राजेश : पूंजीपति क्या करे। पब्लिक का मज़ाक ही ज़लील है।

नईम : पब्लिक का मज़ाक (**व्यंग्य से हँसते हैं**) न जाने इस 'पब्लिक के मज़ाक' की आड़ में कितने गदहे अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। उस्ताद असग़र हुसेन जो गीत गा रहे थे, उसमें अगर 'काहे ब्याकुल निस-दिन रजनी' के बदले 'काहे ब्याकुल हो दिन-रजनी' या 'काहे तुम ब्याकुल दिन-रजनी' होता, तो पब्लिक क्या शायर को संगसार[1] कर देती, लेकिन कौन जाने इसे किसी शायर ने लिखा है या वहीं किसी आर्टिस्ट या म्यूज़िक डायरेक्टर, या फ़िल्म डायरेक्टर ने कुछ उर्दू और कुछ हिन्दी के शब्द लेकर घर घसीटा है!

सुनने वालों में से एक : (**जो सिर पर लम्बी चोटी रखे हैं**) यह फ़िल्म-वाले हिन्दी की गर्दन पर जिस तरह छुरी फेरते हैं, वह कुछ हमीं लोग जानते हैं और उर्दू वाले शोर मचाते हैं कि फ़िल्मों से हिन्दी का प्रचार किया जा रहा है।

नईम : अरे पण्डितजी, ये लोग उर्दू की गर्दन जिस उल्टे छुरे

---

१. संगसार करना—पत्थर मार मार कर ख़त्म कर देना।

से काटते हैं, वह भी कुछ हमीं को मालूम है—'ये गीत हैं दर्दीले, यह राग रुलाना है'—कहां की उर्दू है ? फिर वह एक मशहूर फ़िल्मी ग़ज़ल है, क्या नाम है उसका ?—(सोचते हैं।) हां—दुनिया में ग़रीबों को आराम नहीं मिलता।

असग़र हुसेन : हां, हां।

नईम : मोटर ड्राइवर से लेकर खटारेवाले[1] तक हर कोई इसे मज़े से सिर हिला हिला कर गाता है। मैं जब भी इसे सुनता हूँ, लहू के घूंट भर कर रह जाता हूँ। ज़रा गाना तो उस्ताद वह क्या है उसका दूसरा मिसरा—

असग़र हुसेन : (गाते हैं :)

दुनिया में ग़रीबों को आराम नहीं मिलता
रोते हैं तो हँसने का पैग़ाम नहीं मिलता

नईम : हँसने के पैग़ाम ! कैसी उर्दू है ? सुबहान अल्लाह !

असग़र हुसेन : अरे भाई तुम तो बाल की खाल निकालते हो।

नईम : बाल की खाल ? मैं कहता हूँ, मामूली ख़ामियों का तो मैं ज़िक्र ही नहीं करता। मैं जो ख़ामियां बताता हूँ, उन्हें तो एक गदहा भी जान सकता है।

दीपक : हालांकि गदहे कभी नहीं जानते, सिर्फ ढींचूं ढींचूं करते हैं।

नईम : मैं कहता हूँ, पण्डितजी मुझसे यह सब नहीं सहा जाता। अव्वल तो इन फ़िल्मों में ग़ज़लें ही थर्ड रेट होती हैं और फिर ज़ुल्म यह कि उन्हें गाया भी जाता है।

असग़र हुसेन : यह क्या बात की आपने नईम साहब ?

नईम : गलेबाज़ी के शौक में ख़ाह-म-ख़ाह ग़ज़ल की मिट्टी पलीद की जा रही है। ग़ज़ल गाने की चीज़ ही नहीं।

१ खटारा—छकड़ा

असग़र हुसैन : गाने की चीज ही नहीं और जो बरसों से यह गाई जा रही हैं।

नईम : (हँसते हैं) बरसों से इतनी ग़लत रस्में और इतने लम्बे रिवाज जारी हैं। मैं कहता हूँ हज़रत, अनगिनत ऐसी ग़ज़लें हैं जिनका पूरा पूरा मतलब गाने में अदा हो ही नहीं सकता।

असग़र हुसैन : भला हम भी तो सुनें कौन-सी ऐसी ग़ज़ल है ?

नईम : ग़ालिब की यही ग़ज़ल ले लीजिए—

किसी को दे के दिल कोई नवासंजे-फुग़ां क्यों हो ?

असग़र हुसैन : क्यों, इसे क्यों नहीं गाया जा सकता ?

नईम : इसमें कई ऐसे शेर हैं जिनका मतलब ही गाने में हवा हो जाता है।

असग़र हुसैन : जैसे ?

नईम : जैसे यही शेर लीजिए—

कहा तुमने कि क्यों हो ग़ैर के मिलने में रुसवाई
बजा कहते हो, सच कहते हो, फिर कहियो कि हां, क्यों हो ?

हमदम : (असग़र हुसैन से) क्यों उस्ताद !

असग़र हुसैन : मैंने इसे दसियों बार गाया है।

नईम : तो ज़रा गाईए

असग़र हुसैन : लीजिए

(इसी शेर को गाकर सुनाते हैं।)

हमदम : वाह क्या कहने हैं उस्ताद के।

नईम : यह दाद आपके गले को है।

असग़र हुसैन : यह आप कह सकते हैं। नहीं, मैंने शेर के मतलब का पूरा-पूरा ख़याल रखा है।

नईम : 'मैं' को इस ग़ज़ल में 'मैं' से ज्यादह नहीं पढ़ा जा

सकता और आपने तान में इतना लम्बा कर दिया है कि मैं क्या कहूँ। फिर इस ग़ज़ल का मतलब हम सभी जानते हैं और आपने इस तरह गाया भी नहीं जिस तरह पक्का गाना गाने वाले ग़ज़लें गाते हैं और जिनकी आ...आ...ई...ई में शेर का मिसरा ही डूब कर रह जाता है। आप यह बताइए कि क्या नयी ग़ज़लें भी इस तरह समझ में आ सकती हैं।

असग़र हुसेन : क्यों नहीं !

नईम : मुशायरे में गाकर पढ़ने वालों को गले की दाद दी जाती है, शेरों की नहीं। उनकी गहराई और बारीकी को इतनी जल्दी समझा ही कैसे जा सकता है ?

दीपक : वहां समझने की फ़ुर्सत ही किसे होती है ? जब कोई कवि गाकर कविता पढ़ता है तो सुनने वालों का ध्यान कविता की पंक्तियों, उनकी बारीकी या गहराई की ओर नहीं होता, गाने वाले के स्वर की ओर होता है। यदि उसने गला अच्छा नहीं पाया, तो लूलू बोल कर उसे स्टेज से उतार दिया जाता है और अगर उस पर गंधर्वों की कृपा है, उसके गले में रस है, तो उसे रद्दी से रद्दी कविता पर भी दाद मिलती है ?

असग़र हुसेन : यह आप क्या कहते हैं पण्डितजी।

हमदम : आप को उस्ताद साहब इन मुशायरों का इल्म नहीं। मुझे एक मुशायरे की याद आती है। मैं नया नया लाहौर गया था—एफ० सी० कालेज हाल में मुशायरा था। दो गाने वाले शायरों के बाद मिर्जा अज़ीम बेग चुग़ताई शेर पढ़ने के लिए खड़े हुए। अपने कंधों को ज़रा उठाकर, नथुने फुलाकर, ओंठ सिकोड़ कर, अपने

आधे जिस्मका बोझ छड़ी पर डाल कर उन्होंने एक अजीब शान से सुनने वालों की तरफ़ देखा और फिर सीधे साधे ढंगसे मतला[1] अर्ज़ किया। लेकिन अभी वह पूरा शेर भी न कह पाये थे कि सुननेवालों में से शोर उठा—"तरन्नुम से! तरन्नुम से"[2] मिर्ज़ाने एक नज़र सुनने-वालों पर डाली। उनके सिकुड़े हुए ओंठ और सिकुड़ गये, नथुने और फूल गये, गर्दन धँस गयी, कंधे इतने उभर गये कि पीठ का कूबड़ दिखाई देने लगा—वहीं के वहीं वे कुर्सी पर बैठ गये।

राजेश : आप मिर्ज़ा अज़ीमबेग की बात करते हैं, लाहौर के एक मुशायरे में तो बेचारे जोश साहब को किसी से नहीं सुना। प्रेज़िडेंट ने बहुतेरा शोर मचाया, सुनने वालों को कोसा, डांटा, जोश साहब दोचार बार उठे भी, लेकिन सदा उनकी आवाज 'तरन्नुम से' में डूब गयी। हार कर वे चुप हो गये।

नईम : और शिमले के एक आल इण्डिया मुशायरे में तरन्नुम से गाये जाने वाली जिस चीज़ पर सुननेवाले कुर्सियों से उछल उछल पड़े थे, वह भी जरा सुन लीजिए :

आह कुंजड़न वाह कुंजड़न
आह न भर लिल्लाह कुंजड़न

देख तुझे चुप बोली मेरी आ मैं भर दूं झोली तेरी
आलू, मटर, टमाटर लेकर दिलके टुकड़े तुझको देकर
मैं अपना संसार बसालूं इसमें कुछ अरमान सजालूं
उस संसारमें हो इक मन्दिर इक मूरत मन्दिर के अन्दर
वह मूरत मूरत हो तुम्हारी इस मूरत का बनूं पुजारी

१ मतला = ग़ज़ल की पहली पंक्ति २ तरन्नुम से = स्वर से

आह कुंजड़न, वाह कुंजड़न
आह न भर लिल्लाह कुंजड़न
लम्बे लम्बे बाल हैं तेरे गोरे गोरे गाल हैं तेरे
नयनों में कुछ ऐसा रस है मद भी जिसके आगे बस है
लम्बी सुन्दर नाक है तेरी सूरत कुछ बेबाक[1] है तेरी
भूख में यह बेबाकी लेकिन है जैसे मिट्टीका बर्तन
एक बार गर हाथसे छूटे जुड़े न, एक बार जो टूटे
आह कुंजड़न, वाह कुंजड़न
आह न भर लिल्लाह कुंजड़न

दीपक : आपने ऑल इण्डिया मुशायरे की बात की तो मुझे एक अखिल भारतीय कवि सम्मेलन की बात याद आ गयी। ज़रा पहले का ज़िक्र है। मैंने अभी कविता करना शुरू ही किया था। अभी मेरी सिर्फ़ छः कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में छपी थीं कि मुझे गोरखपुर के ऑल इण्डिया कवि-सम्मेलन में शामिल होनेका निमन्त्रण मिला। स्वीकृति भेजने पर वे लोग इंटर का किराया तार से भेजने को तैयार थे। तब मैं थर्ड में सफ़र करना भी बड़ी बात समझता था। छः कविताओं की पूंजी और ऑल इंडिया कवि-सम्मेलन में शामिल होने की दावत। मेरी खुशी का अन्दाज़ा आप लगा सकते हैं। मैंने स्वीकृति दे दी, रुपये आगये और मैं लाहौर से गोरखपुर पहुँचा। वहां जाकर मालूम हुआ कि कवि-सम्मेलन का प्रबन्ध करने वालों ने बड़े-बड़े ज़मींदारों और राजाओं को फांस रखा है और हिन्दी के जितने कवियों के नाम उन्हें मिले उन सबको उन्होंने

1 बेबाक = संकोचहीन।

बुलावा भेजा है। ३०० के लगभग कवि पहुँचे भी थे। इतने कवियों को कविता पढ़ने का समय कैसे मिल सकता था ? सो अधिकांश कविजन अतिस्वादिष्ट भोजन पर हाथ साफ़ कर, डकारें लेते और कविता पढ़ने की हसरत दिल ही में लिये हुए पंडाल के चक्कर काटते।

नईम : आप भी तो उन्हींमें होंगे ?

दीपक : मैं उनसे भी बदकिस्मत था !

नईम : (आश्चर्य से) बदकिस्मत !

दीपक : मुझे कविता पढ़ने का बे-पनाह शौक था। इसलिए मैं पहले ही से स्टेज पर जा बैठा था और धीरे-धीरे आगे बढ़ता-बढ़ता बिल्कुल सेक्रेट्री के पास पहुँच गया था। भीड़ बहुत थी और इतनी भीड़ को देख कर सेक्रेट्री महोदय कुछ घबरा भी गये थे। सम्मेलन का रंग जमाने के लिए, पहले प्रसिद्ध कवियों को—गाने वाले अखाड़िये कवियों को—बुलाया गया। अभी दो चार ही ने कविता पढ़ी थी कि भीड़ में से व्रजभाषा के दो एक कवियों का नाम लिया जाने लगा। यह शोर इतना बढ़ा कि सेक्रेट्री ने विवश होकर एक को बुलाया। इसके बाद मंच पर काफ़ी देर तक व्रज भाषा के कवियों का राज रहा। तभी किसी ने कवि भोंदूजी को सुनने की इच्छा प्रगट की। इसके बाद 'भोंदूजी' 'भोंदूजी' का वह शोर मचा कि भोंदूजी को बुलाया गया।

नईम : भोंदू ?

दीपक : हास्य रस के प्रसिद्ध कवि हैं। मंझला कद, धोती कुर्ता और कोट, सिर पर गांधी टोपी—मूछों में मुस्कराते, मिसकीन सी सूरत बनाये एक बार जो भोंदू कवि

आकर बैठे तो एक घंटे तक वेही पढ़ते रहे । सेक्रेट्री ने कई बार उन्हें उठाने की कोशिश की; दूसरे कवियों का नाम भी पुकारा; दूसरे कवि स्टेजपर आये भी; भोंदूजी ने हाथ जोड़कर विदा भी लेनी चाही; लेकिन जनता भोंदूजी को छोड़ने पर तैयार ही न हुई । सेक्रेट्री तो अलग रहे, प्रधान और दूसरे कवि भी बड़े परेशान हुए। तब मुझे एक बात सूझी । मैंने सेक्रेट्री साहब के कान में कहा—'आप इस बात का एलान कर दीजिए कि जनता सिर्फ़ भोंदू कवि ही को सुनना चाहती है, इस लिए आज का सारा दिन भोंदू जी ही पढ़ेंगे' । बस इस एलान का होना था कि भोंदूजी ने जनता से गिड़गिड़ा कर छुट्टी मांगी—उनकी पूंजी भी शायद खत्म हो चुकी थी—जनता भी चुप रही । अब ऐसे लोकप्रिय कवि के बाद कौन पढ़े ? कोई तैयार न होता था और जनता तालियां पीट रही थी । तब हड़बड़ा कर सेक्रेट्री ने मेरी ओर देखा और बोले, । 'अब दीपक, लाहौर के कविता पढ़ेंगे'—मैं उठा, मालूम हुआ जैसे आधे शरीर को लकवा मार गया है । जनता के उस मूड में मेरी जो दुर्गति हुई होगी उसका आप अन्दाजा लगा सकते हैं ।

[नईम साहब और उनके साथी ठहाका मारकर हंस पड़ते हैं ।]

दीपक : अब जरा उस हास्य-रस की बानगी भी देख लीजिए :

कौन हरे अब भूक पेट की
सूखे टुकड़े ही मिल जायें चरचा कैसी चाकलेट की—
कौन......

बी० ए० करके बेकारी है
जीने तक से बेज़ारी है
आई रे किस काम पढ़ाई
खोई आंखों की बीनाई
अनपढ़ रहते तो अच्छा था, पाते एवजी कहीं मेट की—
कौन .....

सच है आया उन पर जोबन
वेणी क्या, लहराती नागिन
आंखों में, ओठोंमें रस है
जेबें खाली हैं तो बस है—
चक्कर काटा करो निरर्थक खाक छानते हुए गेटकी—
कौन .....

अपना इश्क तो है धोबन से
फूटे पड़ते उस जोबन से
गौर नहीं पर है क्या नटखट
छीन ले गई दिल क्या झटपट
सोच धुलाई के है लेकिन दिन दिन बढ़ते हुए रेट की—
कौन .....

हमदम : लेकिन यह तो तरक्की पसन्द है !

नईम : तरक्की पसन्द ! (ठहाका मारते हैं।) यह तरक्की पसन्दी की भी खूब कही ।

रमेश : (आगे बढ़कर) मैं हमदम साहब से सहमत हूँ। माफ़ कीजिएगा लोग मुझे भी प्रगतिशील कहते हैं ।

नईम : प्रगतिशील !

रमेश : जी, यही 'तरक्की-पसन्द' ! मैं यह कहना चाहता हूँ कि यही कविता नहीं जो पण्डितजी ने सुनाई, बल्कि आप वाली

नज्म भी पूरे तौर पर प्रगतिशील है! आपको कुंजड़न पर कविता लिखना बुरा क्यों लगा, इसीलिए ना कि वह नीचे दर्जे से है? लेकिन आज का प्रगतिशील, श्रीमान, आकाश की ओर नहीं देखता। वह धरती की ओर, बल्कि यों कहिए कि पाताल की ओर देखता है। उसके विचार में आकाश की ओर इतना देखा जा चुका है कि आंखें पक गयी हैं।

नईम : (हँसकर) इसलिए अब फावड़ा लेकर ज़मीन खोदने की ज़रूरत है—आंखों को भी आराम मिलेगा और अनजाने भेद भी खुलकर सामने आ जायेंगे।

रमेश : यों क्यों नहीं कहते कि धरती को इस हदतक भुलाया गया है और उसने तंग आकर इतना शोर मचाया है कि अब सब की निगाहें उसी की समस्याओं में उलझ कर रह गयी हैं। देवताओं पर बहुत कुछ लिखा गया। आज का प्रगतिशील उनके बारे में लिखना चाहता है जो इन्सान होकर भी कुत्तों और पिल्लोंसे बदतर है। फिर अगर वह कुंजड़न......

नईम : (हँसकर) या कहारन, पनिहारन, धोबन, भंगन.....

महतरानी हो कि रानी, मुस्करायेगी जरूर
कोई आलम हो, जवानी, गुनगुनायेगी जरूर

रमेश : (कटुता से) या कहारन, पनिहारन, धोबन, भंगन पर लिखता है तो क्या बुरा करता है। वह मनुष्य को सृष्टि का सर्व-श्रेष्ठ प्राणी समझता है और धोबन या भंगन को इस लिए हेय नहीं मानता कि उसके पास आपकी तरह धन, ज्ञान या ख्याति नहीं, कि वह गंदी, मैली दुर्गन्ध भरी गलियों में रहती है (भाषण देने के अन्दाज़ में) वह उस

दिन को निकट लाना चाहता है जब धोबन या भंगन का नाम सुनकर आप नफ़रत से नाक न सिकोड़ें, बल्कि......

दीपक : शान्ति...शान्ति...शान्ति !

नईम : लेकिन उसकी निगाहें वही पुरानी हैं। उन निगाहों की भूख भी वही पुरानी है। वह कुंजड़न, भिखारन, या भिखमंगन की उलझी हुई लटों का ज़िक्र इस तरह करता है जिस तरह किसी शहज़ादी की नागिनों सी काकुलों[1] का और फिर उन गंदी मैली गलियों में भी वह अपने नफ्स[2] की, अरमान भरे दिल की प्यास बुझाने का सामान ढूंढ लेता है। इन जगहों पर पहुँच कर, उसके पैरों में तेजी आ जाती है, उसकी आंखें चमक उठती हैं और उसके मुंह से राल टपकने लगती है। **(हँस कर)** वही पुराना भगोड़ा है वह।

रमेश : आप उन कवियों की बात करते हैं जो तरक्कीपसन्द नहीं, लेकिन बनते हैं। और फिर सोलहों आने तरक्कीपसन्द कवि अभी गुमनामी के धुंधलकों में टामकटोये मार रहा है। आनेवाला कल उसे पहचान पायेगा !

हमदम : अ-म्यां, बीते कल में भी तरक्कीपसन्द थे और मैं तो कहता हूँ हर वक्त और हर जमाने में लोग तरक्कीपसन्द रहे। आप हँस देंगे, पर 'गोरख धंधे' जैसे पुराने नाटक का पहला सीन पूरे तौर पर तरक्कीपसन्द है। **(रेडियो पार्टी की ओर देखकर)** अमजद और अफ़ज़ल ने उस नाटक में पार्ट किया है। अभी चन्द दिन पहले तो रेडियो

---

१. काकुल = कुंतल २. नफ्स = वासना।

पर हुआ था, क्यों अमजद याद है न वह ! ज़रा सुनाओ तो ।

अमजद : कौन सा सीन ?

हमदम : अ-म्यां वही कोयले की खान वाला ! जहां रेलवे लाइन पर ठेला गाड़ी में मज़दूर कोयला भरते हैं । तुम और अफ़ज़ल ही ने तो उस में मज़दूरों का पार्ट किया था । ज़रा सुनाओ न वह गाना !

अफ़ज़ल : अजी उस में क्या रखा है ?

नईम : अरे भई सुना दो ज़रा ।

अमजद : चलो, अफ़ज़ल सुना दो ।

अफ़ज़ल : डायलाग समेत ?

नईम : क्या हर्ज है !

(अमजद और अफ़ज़ल भाव भंगियों सहित सुनाते हैं)

अमजद : इलाही तेरा हज़ार हज़ार शुक्र है कि हमारी रोज़ी का ज़रिया[1] काला है, मगर रोज़ी काली नहीं है ।

अफ़ज़ल : कोयलों की कालख ने हमारा मुंह काला कर रखा है, लेकिन यह स्याही क़यामत के दिन तेरे आगे शरमाने वाली नहीं है ।

(दोनों गाते हैं :)

हमारे जिस्म हैं गो सूरते-ज़ाग-ो-ज़गन[2] काले
मगर ऐसे नहीं जैसे कि हों कालों के फन काले
हमारा घर भी काला है हमारे पैरहन[3] काले
मिले हैं जीते जी गोया हमें गोरो-कफ़न काले
सियाहनामी हमारी उन स्याहकारों से अच्छी है
कि हैं जिनका लिबास उजला तो दिल काले चलन काले

१. साधन २. चील कौआ ३. वस्त्र ।

रमेश : लेकिन पुराने नाटक गरीबी को बुरा न बताते थे, बल्कि उसे ऊँचा दर्जा देते थे। आजका तरक्की पसन्द गरीबी से जंग करके उसकी हस्ती दुनिया से मिटा देना चाहता है। इसके आलावा, पुराने नाटकों का उद्देश्य देखने वालों की दिलचस्पी का सामान जुटाना था। उनमें रोया भी जाता था तो सुर और ताल से। आजका तरक्की पसन्द अगर हँसाता भी है तो रुलाने के लिए।

अमजद : यह रुलाने के लिए हँसाने की खूब रही! बखुदा रमेश साहब, हमें ऐसा हँसाना नहीं चाहिए जो रुलाये। कहाँ वह कॉमिक होते थे कि तबीयत बाग-बाग हो जाती थी। अकबर सुनाओ न ज़रा कोई कॉमिक का टुकड़ा। वही डाली वाला या गुलदम वाला। इन रमेश साहब को भी मालूम हो कि कॉमिक कैसा होता है?

अकबर : अजी छोड़िए अब उनमें क्या रखा है। (**लम्बी सांस लेकर**) कहां वह 'न्यू एलफ्रेड कम्पनी' की स्टेज, कहां वह सोहराबजी सा कॉमिक एक्टर।

अफ़ज़ल : और कहां अकबर का वह चंचल हुस्न। खुदा कसम नईम साहब जब अकबर औरत का पार्ट करता था तो सत्तर-सत्तर बरस के बूढ़ों के ईमान डगमगा जाया करते थे। अरे यार, दिखाओ कोई छोटा-मोटा सीन, कोई गाना, कोई नाच।

अकबर : मैं 'डाली का' पार्ट करूँ तो दूसरा कौन करेगा?

अमजद : वह गुलदुम वाला नाच क्यों न दिखाओ।

अकबर : नाच! कौनसा?

अमजद : वही बाल जाल वाला।

अकबर : अजी हटाइए। मैं अब नाचूंगा!

नईम : भई अकबर, हमारी क़सम।

दीपक : अरे भाई तुम नाच शुरू करो। हम कल्पना कर लेंगे कि तुम बीस बरस पहले की वही गुलदुम हो जो न्यू एलफ्रेड कम्पनी की स्टेज पर लोगों के दिल छीना करती थी। लो भई, जरा जगह छोड़ दो यहां।

(तत्काल वहीं एक छोटासा दायरा बन जाता है।)

अकबर : (उठते हुए) आप जोर देते हैं तो.......

अमजद : (एलान करने के अन्दाज़ में) न्यू एलफ्रेड कम्पनी का स्टेज। सुन्दरी गुलदुम नाचते हुए आती है। गुलरुका पार्ट भी गुलदुम खुद ही करती है।

(अकबर गाते और नाचते हुए बढ़ता है।)

बाल जाल, गालों पे लाली,
नागिन लट काली,
कि अँखियां मतवाली

नाज़ुक नाज़ुक कमर
लचके जैसी फूलों की डाली
जोबनवाली छब निराली
मेरी उमरिया बाली
कि अँखियां मतवाली

(दोहा)

एक तो चिकना पीपल का पत्ता, दूजे चिकना घी
तीजे चिकना मेरा जोबनवा, मेरे यारोंका ललचे जी
बाल जाल—

नईम और दूसरे लोग : वाह, उस्ताद क्या कहने है, वाह वाह।

अमजद : भई, किसी कॉमिक का सीन भी हो जाय।

राजेश : गोल्डन गोली वाला वह सीन हो तो कैसा रहे !

अमजद : पण्डित राधेश्याम के नाटक 'परिवर्तन' का कॉमिक है, अफ़ज़ल ही ने तो किया था रेडियो पर डाक्टर का पार्ट, यह राजेश, बलबीर, हनीफ़ गणेश, सभी तो हैं, ज़रा दिखाओ भई, इन्हें पुराने कॉमिक की बानगी।

अफ़ज़ल : जैसी आपकी मर्ज़ी।

अमजद : (**घोषणा के अन्दाज़ में**) डाक्टर के० डब्लयू० भट्टाचार्य का गोल्डन ऑफ़िस। डाक्टर भट्टाचार्य दो रोगियों के साथ दाखिल होते हैं।

[**छोटा सा दायरा बन जाता है अफ़ज़ल बलबीर और हनीफ़ के साथ बढ़ता है।**]

अफ़ज़ल : (**डाक्टर**) एक बार कह दिया, दस बार कह दिया, सौबार कह दिया, गोल्डन गोली इस्तेमाल करो। दुनिया भर के रोगों के लिए गोल्डन गोली रामबाण है।

बलबीर : (**पहला रोगी**) हुज़ूर रात से मेरा पेट फूल रहा है।

अफ़ज़ल : तो गोल्डन गोली का लेप करो, गोल्डन गोली को तेल में मिलाकर उसकी मालिश करो, गोल्डन गोली का प्लास्टर चढ़ाओ, गोल्डन गोली पानी के साथ निगल जाओ !

हनीफ़ : (**दूसरा रोगी**) : और मुझे क्या हुक्म है ?

अफ़ज़ल : तुम्हें पुराना दमा है ?

हनीफ़ : जी !

अफ़ज़ल : तो गोल्डन गोली से बढ़कर दमे की दूसरी कोई दवा नहीं। यही गोली वह गोली है, जो दुनिया के तमाम छोटे बड़े दवाखानों में मिलती है; यही गोली वह गोली है जिसका नोटिस और जिसकी ज़ाहिर ख़बर तमाम

समाचार पत्रों में सूरज की किरणों के समान चमकती है। जाओ, एक रुपया दो और हमारे कारखाने से गोल्डन गोली खरीद लो।

[दोनों रोगी जाते हैं और तीसरे के रूप में गणेश आता है।]

गणेश : (तीसरा रोगी) डाक्टर बाबू, डाक्टर बाबू, मेरे भाई को निमोनिया हो गया है।

अफ़ज़ल : तो निमोनिया के केस को सिर्फ़ गोल्डन गोली ही फ़ायदा पहुँचाती है। गोल्डन गोली खिलाओ। गोली किसी तरह उसके पेट में पहुँचाओ।

(गणेश चलने को होता है।)

—— : देखो! (रोगी रुकता है।) गोल्डन गोली सिर्फ़ हमारी ही ईजाद की हुई है। नकल से खबरदार रहना। हमेशा डिबिया पर गिन्नी का मार्क देख कर गोल्डन गोली खरीदना। जाओ, एक रुपया देकर कारखाने से डिबिया ले लो।

(तीसरा रोगी जाता है, चौथे के रूप में खन्ना आता है)

खन्ना : (चौथा रोगी) अजी हुजूर मेरे घर में बड़ी तकलीफ़ है। उसके सात महीने का गर्भ है।

अफ़ज़ल : गर्भ है तो गोल्डन गोली क्यों नहीं खिलाते? बच्चों को हमल ही में गोल्डन गोली मिल जाने पर जीवन भर बीमारी पास नहीं आती। सुनो, प्लेग में, कालरा में, थाइसिसमें, मलेरिया, इन्फ्लुएंजा, डाइब्रिटीज़, डिस्पेपसिया, गनोरिया, लिकोरिया और निमोनिया में गोल्डन गोली ही बढ़िया डाक्टर है।

[चौथा रोगी जाता है और रमजानी के रूप में राजेश आता है।]

राजेश : (रमज़ानी) वह गोली क्या है बस अल्लाह ही अल्लाह है। अजी डाक्टर साहिब !

अफ़ज़ल : अहा, रमज़ानी आया। देखो रमज़ानी हमारी गोल्डन गोली ही के कारण हमारा गोल्डन पेलेस, गोल्डन पेपर, गोल्डन डिस्पेंसरी, गोल्डन स्ट्रीट, गोल्डन आफ़िस और गोल्डन पोस्ट आफ़िस है।

राजेश : डाक्टर साहब, इस वक्त मैं यह लेक्चर नहीं सुनने आया हूँ।

अफ़ज़ल : लेक्चर की बात नहीं है रमज़ानी, तार का पता सिर्फ़ 'गोल्डन' है। इससे बढ़कर और क्या सबूत गोल्डन गोली की कामयाबी का होगा। और सुनो रज़जानी.....

राजेश : रामज़ानी बाज़ आया। जी हजूर, कुछ दम तो लीजिए या यह मेल ट्रेन बरेली से चल कर रायपूर ही टहरेगी। (सौ रुपये का नोट दिखा कर) देखिए यह क्या है ?

अफ़ज़ल : सौ रुपये का नोट। इतने रुपये की बहुत गोल्डन गोली मिल जायेगा। और एक खुबसूरत केलेंडर भी मुफ्त नज़र किया जायेगा। इतना ही नहीं कारखाने की फ़हरिस्त में तुम्हारा नाम भी छाप दिया जायेगा।

राजेश : (स्वगत) खुदा बचाये ऐसे झक्की से। (प्रकट) डाक्टर साहिब ! यह नोट गोल्डन गोली की खरीदारी के वास्ते नहीं आया।

अफ़ज़ल : फिर क्या कोकीन लेने आया है।

राजेश : अजी गोल्डन भी नहीं, कोकीन भी नहीं, चन्दा बाई ने एक शीशी जहर मँगाया है।

अफ़ज़ल : आह ज़हर ! एक शीशी ज़हर ! हुक्म नहीं है। उसके

लिए अभी इस तरह बेचने का हुक्म नहीं है। गोल्डन गोली ले जाओ जहर का भी काम करेगी —

[अचकचाता है कि क्या कह गया—सब हँसते और दाद देते हैं।]

अमजद : वाह वा, सुबहान अल्लाह ! इसे कहते हैं कॉमिक। और फिर यह तो महज़ एक सीन का टुकड़ा है। पूरा कॉमिक देखिए तो मज़ा आजाये। यह हँसाना हँसाने के लिए है, रुलाने के लिए नहीं। है कहीं इसका जवाब आज के नाटक में ? कहीं स्टेज पर देखा है ऐसा दिलचस्प नाच और ऐसा कॉमिक ?

नईम : (व्यंग से) आज का स्टेज और आज का नाटक ! अरे, भाई जब स्टेज ही नहीं तो ऐसा कॉमिक होता कहाँ ? रहा आज का नाटक—तो भाई, वह भी सिर्फ पढ़ने की चीज रह गया है। नाटककार उसे लिखता है, अपने दिमाग़ के स्टेज पर खेलता है अपनी पत्नी के सामने पढ़कर और एक्ट करके उसे सुनाता है और किसी मैगज़ीन में छपने के लिए भेज देता है। स्टेज पर उसे खेलने की नौबत ही नहीं आती। जिस स्टेज का आप ज़िक्र करते हैं, उसका स्थान आज के सिनेमा ने ले लिया है। और सिनेमा पर ऐसे नाच, गाने, दोगाने, सहगाने और ऐसी नकलें रोज़ देखने को मिल जायेंगी।

दीपक : अभी सेठ हर गोपाल ने जो नयी कम्पनी खोली है, उसके पहले फ़िल्म ही में एक नाच-मिला-दोगाना है, बाल-जाल के दोगाने से भी बढ़कर ! उस्ताद असग़र हुसेन ही तो देख रेख कर रहे हैं उसकी।

अमजद : जिसमें रेडियो-स्टार चमेली बाई हैं !

राजेश : अब वह फ़िल्म-स्टार बन जायगी, और तमाशा देखिए—
वह कॉमिक का पार्ट करेगी।

अफ़ज़ल : खुदा कसम, इससे तो अच्छा था, हमारे अकबर ही को उसका पार्ट दे देते। इस उम्र में भी वह जल्वे दिखाता कि होश हवा हो जाते।

(सब हँसते हैं।)

असग़र हुसेन : दीपक साहब ही ने तो लिखा है वह दोगाना।

नईम : और हमें बताया तक नहीं। वाह, ज़रा सुनें तो हम भी।

दीपक : अजी, सुनने में उसका क्या आनन्द आयेगा। चमेली होती तो सुनाते आपको।

अफ़ज़ल : तुम्हीं बन जाओ दो घड़ी को चमेली अकबर। डाली और गुलदुम से तो बुरी नहीं चमेली।

राजेश : (अचानक सामने देखकर और चौंक कर) अरे! वह चमेली ही तो आ रही है। बुलालो ज़रा उसे।

अफ़ज़ल : नहीं भाई अब वह क्या बात करेगी हम लोगों के साथ! सेठ की चहेती है। उसी के लिए तो सेठ हरगोपाल ने कम्पनी खोली है।

रमेश : अरे बुलाओ तो, कहना उस्ताद बुलाते हैं।

असग़र हुसेन : तुम ज़रा कोरस शुरू करो। अभी मँगाये लेते हैं।

(अहमद अफ़ज़ल और दूसरे कुछेक अभिनेता गाते हैं।)

राम् कुम्हार की नटखट छोरी
नटखट छोरी
सिमट सिमट सरमावे—
रेसम का जब लहँगा फूले
ओ, लहँगा फूले
छतरीसी बन जावे—

नईम : (ठहाका लगाते हैं) वाह ! छतरीसी बन जावे !

(चमेली गाना सुनकर आ जाती है ।)

चमेली : आदाब-अर्ज उस्ताद साहब ! कहिए क्या हो रहा है ?

असग़र हुसेन : (रुक कर) कहो तुम किधर !

चमेली : इधर ही ज़रा घूमने चली आई थी । कहिए क्या हो रहा है ।

असग़र हुसेन : ज़रा इस गाने की रिहर्सल करा रहा हूं । सेठ साहब ज़ोर दे रहे हैं कि इसे कल फ़िल्मा लिया जाये । अगर तुम पलभर को बैठ जाओ तो इसकी रिहर्सल हो जाये ।

चमेली : यह अच्छी जगह निकाली है आपने रिहर्सल के लिए ।

असगर हुसेन : अरे भई, इससे अच्छी जगह और कौन होगी ? सैर की सैर और काम का काम ! अकबर को तुम्हारा पार्ट करना पड़ता है और मूड नहीं बनता ।

चमेली : लेकिन उस्ताद मुझे तो.....

असग़र हुसेन : बस पांच मिनट में खत्म हुई जाती है एक रिहर्सल ।

चमेली : लेकिन मैं नाचूंगी ! इधर ऊधर इतनी टोलियां बैठी हैं ।

असग़र हुसेन : नहीं, तुम ज़रा अपना पार्ट गा दो, नाचने की ज़रूरत नहीं ।

चमेली : जैसी आपकी मर्ज़ी, लेकिन मुझे जल्दी है ।

असग़र हुसेन : बस पांच मिनट । हां भई चलो !

रामू कुम्हार की नटखट छोरी,

[सभी फिर गाते और नाचते हैं । चमेली पहले गाती है, फिर जोश में आकर नाचने लगती है !]

नटखट छोरी

सिमट सिमट सरमावे—

रेसम का जब लहंगा फूले
छतरीसी बन जावे

अफ़ज़ल :

भोली सी गोरी, तोरी पतली कमरिया
पतली कमरिया, बाली उमरिया
बाली उमरिया, न लागे नजरिया
नजर लगे कुम्हलावे

चमेली :

ओ रे कलाल के नटखट छोरे
नटखट छोरे
क्यों तू बढ़ता आवे—

(कोरस)

रामू कुम्हार की नटखट छोरी
सिमट सिमट सरमावे—

चमेली :

ढलियासे मोरी कमरिया लचक गयी।

अफ़ज़ल :

अँगिया मसक गई, बिजली चमक गयी।

चमेली :

सीने से जालिम चुनरिया खिसक गयी।

अफ़ज़ल :

सीनों में आग लगावे !

चमेली :

ओरे कलाल के नटखट छोरे

[पृष्ठभूमि में बहुत लोग इकट्ठे हो जाते हैं। चमेली सहसा गाना और नाच बन्द कर देती है।]

चमेली : नहीं उस्ताद, देखो सभी लोग इधर आ रहे हैं। मैं नहीं ठहर सकती एक पल भी यहां। मुझे अपना पार्ट याद है। तुम इनको याद करा दो।

[चली जाती है। दो एक शागिर्दों को साथ लिये हुए पक्के गाने के उस्ताद और हातिम अलिखां आते हैं।]

हातिम अली : अरे भई, यह क्या भीड़ भाड़ इकट्ठी कर रखी है। क्या हो रहा है ?

[प्रायः सभी लोग उठकर उस्ताद का अभिवादन करते हैं।]

नईम : आइए उस्ताद बैठिए। योंही, कुछ गाना वाना, गप-शप हो रही थी। आइए ! तशरीफ़ रखिए ! कहिए, किधर से आये ?

हातिम अली : अरे भई, रेडियो स्टेशन से आ रहे हैं। प्रोग्राम था। पक्का गाना और पन्द्रह मिनट ! मैंने बीस बार कहा है कि सरकार पन्द्रह मिनट में तो ख़याल का बोल भी नहीं उठता, कमसे कम आध घंटा तो समय दिया करें। लेकिन उन बेचारों को सुनने वालों का ध्यान रखना पड़ता है। इन फ़िल्मी गानों ने तो लोगों के मज़ाक का सत्यानास कर दिया है।

नईम : इस फ़िल्मी दौर में आर्ट पक्का गाना बन कर रह गया है।

हातिम अली : और फिर भाई, सच कह दें, हमें बंधे वक्त और बंधी जगह का गाना पसन्द नहीं।

असग़र-हुसेन : कौनसा ख़याल गाया।

हातिम अली : गाया। अंह ! गाने को जी ही किसका चाहता था। तबलची अचानक बीमार हो गया। दूसरे की ड्यूटी न

थी। गफ़्फ़ार मेरे साथ बजाया करता था। सो वह भी छुट्टी पर।

गफ़्फ़ार : आदाब अर्ज़ उस्ताद !

हातिम अली : अच्छा, तुम यहां डटे हो और हमें उस नौसिखिए से माथा फोड़ना पड़ा ! शीशे के पीछे एनाउंसर साहब बैठे थे। चेहरे पर उनके बेज़ारी टपकती थी। वे इस ताक में थे कब यह आ...आ...ई...ई...खत्म हो और औरतों के प्रोग्राम का एनाउंसमेंट करें।

नईम : (हँसकर) और कुछ न सही दो चार मीठी रसीली आवाज़ें तो सुनने को मिल जाती हैं।

गफ़्फ़ार : देखने को भी तो हमारी सूरतों की बनिस्बत.......

हातिम अली : दूसरा प्रोग्राम सवा नौ बजे था। सो शायद किसी बड़े अफ़सर की तकरीर थी, इसलिए कट गया। अब साढ़े ग्यारह बजे फिर एक प्रोग्राम है। वहां बैठे रहने के बदले, हमने सोचा ज़रा चौपाटी ही की सैर कर आयें।

असग़र हुसेन : तो आइए बैठिए। गफ़्फ़ार भी यहीं हैं। साज़ भी मौजूद हैं। तानपूरा लीजिए और सुनाइए कोई एक दो बोल खयाल के। न बँधा वक्त है, न बँधी जगह है।

हातिम अली : अरे भाई.........

असग़र हुसेन : नहीं साहब, अब तो सुने बिना न जाने देंगे। हो जायें कोई एमन कल्यान के एक दो बोल।

हातिम अली : मुझे फिर रेडियो स्टेशन जाना है।

असग़र हुसेन : हम सब आपके साथ चलेंगे।

(तानपूरा सम्हाल लेते हैं।)

असग़र हुसेन : लो गफ़्फ़ार ज़रा तबला और इरशाद तुम भी सारंगी उठाओ। हां, उस्ताद....

[उस्ताद हातिम अलीखां तानपूरा लेकर बैठ जाते हैं। उसके कान उमेठ और स्वर मिलाकार एक दो बार खंखारते हैं और फिर गाना आरम्भ करते हैं। :

अरी, एरी आली पिया बिन

खयाल के पहले बोल के साथ ही पृष्ठ-भूमि में टोलियां छँटनी शुरू हो जाती हैं और अस्थाई खत्म होते होते वहां, प्रो० नईम, और उनके कुछेक साथियों के अतिरिक्त कोई नहीं रहता। उस्ताद साहब के तान-पलटे पूरे जोरों पर होते हैं, जब पर्दा गिर जाता है।]

नोट : इस नाटक को खेला जाये तो पुराने नाटकों के दृश्य उसी प्रकार किये जायं जैसे पुराने जमाने के थीएटर में होते थे। यथा सम्भव पुराने एक्टरों के लब-ो-लहजे और भाव-भंगियों की नकल की जाय ! गीत गाकर ही दिखाये जायं और स्वर से पढ़ने वाले कवियों की नकल भी स्वर ही से पढ़ कर की जाय ! —लेखक